Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/26-28
R.N.I.No. 51966/1989,ISSN 2455-2399
Date of Publication 01st June 2026
Date of Posting 01st & 05th June 2026
Total Page : 68

जून 2026 • वर्ष 38 • अंक 06 • मूल्य 60

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका



आर्टेमिस-2
चाँद पर अन्वेषण


SCOPE GLOBAL SKILLS UNIVERSITY
CENTRAL INDIA'S 1ST SKILLS UNIVERSITY
Google Cloud Certified Digital Campus Elite Tier
Certified Digital Campus on Google Cloud
Be a part of India's Leading
Ind-Versity
Industry Powered University
NEP & NSQF ALIGNED UNIVERSITY
INDUSTRY-READY COURSES, ONLY AT SGSU!
IBM
B.Tech - CSE (Artificial Intelligence and Machine Learning.
Google
B.Tech - CSE M.Sc. I MCA (Cloud Computing) BCA - IT
Geeks of Gurukul
B.Tech - CSE (AI & DS) I BCA (AI-ML, Cyber Security) I BBA
RELIANCE Animation Academy
B.Sc. (Animation & Film Making)
NxtWave Institute of Advanced Technologies
B.Tech - CSE (Artificial Intelligence)
iIhs
B.Sc. (Assisted Reproductivity Technology & Clinical Embryology)
BBA (Event Management)
NRAI
BBA (Hospitality & Restaurant Mgmt.)
Tally
B.Com (Financial Accounting)
HYUNDAI Hero BOSCH
Diploma ME Automotive Tech.
MEPSC
B.Com (HR Operation)
WIZCRAFT
BBA (Event Management)
N·S·D·C RE IMAGINE FUTURE
2 Global Certifications Every Year from 22 Industry Leaders
CISCO
intel
IT SPECIALIST
Microsoft
aws
unity
ADMISSIONS OPEN 2026-27
Computer Science & Engineering | Mechanical Engineering | Electrical, Electronics and Communication Engineering | Future Skills & Information Technology | Animation, Multimedia, Gaming and VFX | Management Studies | Hospitality and Tourism | Education | Banking, Finance & Commerce | Modern Science | Agriculture & Allied Technologies | Pharmaceutical Sciences | Humanities | Languages | Fine & Performing Arts | Design | Media & Journalism
KEY HIGHLIGHTS OF SGSU
Industry Ready Skills & Certifications
Internship Embeded Programs
Learn from IIT Alumni
Placement Assurance Programs
Industry Ready Global Certification
live Industry Projects
CALL: 7880100790, 0755-2432903/904 | www.sgsuniversity.ac.in
SGSU Campus, NH-12, Near Misrod, Hoshangabad Road, Bhopal - 462047 (M.P.)
Scan this to see our Courses

RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
जून 2026
वर्ष 38, अंक 6

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित



प्रधान संपादक
संतोष चौबे

कार्यकारी संपादक
डॉ.विनीता चौबे

सह-संपादक
मोहन सगोरिया

उप-संपादक
रवीन्द्र जैन
डॉ. मनीष श्रीवास्तव

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक
डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी

प्रबंधक
ज्योति रघुवंशी

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 383

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

परामर्श मण्डल

शरदचंद्र बेहार
डॉ. मनोज कुमार पटैरिया
देवेन्द्र मेवाड़ी
डॉ. संध्या चतुर्वेदी
डॉ. रविप्रकाश दुबे
प्रो. अमिताभ सक्सेना
डॉ. गौरव शुक्ला
डॉ. अरुण आर. जोशी
डॉ. विजय सिंह
डॉ. समित तिवारी
डॉ. पी.के. घोष

संस्थागत सहयोग

डॉ. पुष्पा असिवाल
डॉ. अरविंद तिवारी, डॉ. संगीता जौहरी,
डॉ. सीतेश सिन्हा, डॉ. रवि चतुर्वेदी,
डॉ. मुनीष गोविंद, डॉ.ब्रिजेश सिंह
संतोष शुक्ला

राज्य प्रसार समन्वयक

राजेश शुक्ला, संतोष उपाध्याय, निशांत श्रीवास्तव, आर.के. भारद्वाज, अनूप चौबे, शशिकांत वर्मा, अब्दुल मसीद, योगेश मिश्रा, शेषदत्त सुतार, अंबरीष कुमार झा,अनूप श्रीवास्तव, इंद्रनील मुखर्जी, एच.लोबिनो चीशी, लियाकत अली खोखर, मुदस्सर कर, नरेन्दर कुमार, दलजीत सिंह, आबिद हुसैन भट्ट, शलभ नेपालिया, शैलेष बंसल, पुर्विश पंड्या, चंदेश जे. वोरा, हेमलाल बालाचंद्रन, बिनीस कुमार, रजत चतुर्वेदी, सुजीत कुमार, विपुल शर्मा, गौथम सुब्रमणि, प्रशांत राज, ध्रुवज्योति सैकिया, मोइरांगथेम बॉय बॉय सना सिंह, सेंट लालनुनमाविया, जयंत साहा, अवनीश कुमार दीक्षित, प्रिंसी राय सिंह, प्रणब नायक, सुभाषिश दत्ता

समन्वयक प्रचार एवं विज्ञापन

महीप निगम, राजेश पंडा
विनय व्यास, श्याम दुबे

आवरण एवं डिजाइन

वंदना श्रीवास्तव,
शेख इक़्तेदार कुरैशी









पत्र व्यवहार का पता :

संपादक
'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए'
आईसेक्ट लिमिटेड, मुख्यालय स्कोप कैम्पस,
एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड,
मिसरोद, भोपाल–462047
फोन : 0755-2700466 (डेस्क),
2700401 (रिसेप्शन)
e-mail : electronikiaisect@gmail.com website :
www.electroniki.com

मूल्य : 40/-
(आईसेक्ट समूह के विद्यार्थियों के लिए)

इस अंक का मूल्य : 60/-

शुल्क :
वार्षिक रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित : 960/-
त्रैवार्षिक रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित : 2800/-
पंचवार्षिक रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित : 4500/-
आजीवन : 10,000/-
बैंक अकाउंट नं. : 35924450543
IFSC Code : SBIN0003867
State Bank of India, Mahavir Nagar, Bhopal (M.P.)

विज्ञापन एवं क्रय के लिए संपर्क :
महीप निगम
आईसेक्ट मुख्यालय स्कोप कैम्पस
एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड,
मिसरोद, भोपाल (म.प्र.)
मोबाइल : 8818883165
ई–मेल : mahip@aisect.org

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका के भीतर उपयोग किये गये चित्र गूगल से साभार लिए गये हैं। सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट लिमिटेड (आईसेक्ट पब्लिकेशन), प्लॉट नं. 10, सेक्टर सी, इंडस्ट्रीयल एरिया, बगरौदा, जिला भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित।
प्रधान संपादक- **संतोष चौबे**।



अनुक्रम

स्तम्भ

पाठकीय

मई 2026 अंक की उपलब्धि है आपकी संपादकीय। यूँ तो यह संपादकीय एक हल्के-फुल्के किस्से से शुरू होती है लेकिन जल्दी ही कृत्रिम बुद्धिमत्ता के गंभीर सवालों को खड़ा करती है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने सर्जनात्मकता के दायरे में अपना जो विस्तार किया है वह आश्चर्य में तो डालता ही है हमें चिंता में भी डालता है। क्या मनुष्य की संवेदना पर भी एआई का कब्जा हो जाएगा? ऐसे में आपका यह कहना कि एआई को हमें अपनी भाषा जो कि हमारी अनुभूति की परिचायक भी है उसे हमें तकनीक को नहीं सौंपना है-पूर्णतः सत्य और प्रासंगिक है। संपादकीय में आपने तकनीक के विकास की कथा, टूल्स और प्लेटफार्म की बिंदुवार चर्चा इस अंदाज में की है वह किसी कहानी से कम नहीं। वस्तुतः आपकी संपादकीय कथा का रस देती है। इस अंक में वैसे तो बहुत उपयोगी और महती सामग्री दी गई है लेकिन दो लेखों के बारे में लिखना में आवश्यक समझता हूँ। पहला है समीर गांगुली का - जो कि आपकी ही संपादकीय का एक्सटेंशन है। किस तरह एआई से लेखन कार्य हो रहा है और उससे पाठक भरमा रहा है। यह स्पष्ट होता है। कहना होगा कि संजीव जायसवाल की कहानी भी इसी एआई की देन लगती है। दूसरा लेख जिसका मैं जिक्र करना चाहूँगा- वह है युद्धिष्ठिर भार्गव का एटम और महात्मा। आज के दौर में जब सारी दुनिया बारूद के ढेर पर खड़ी है एक ही रास्ता है जो महात्मा गांधी ने दिखाया था। आज सारा विश्व भी उसी रास्ते की ओर देख रहा है। आप और आपकी पत्रिका इस पक्ष में खड़ी है इसके लिए आपका साधुवाद

अर्जुन पंडित, इटारसी

मैं पिछले दो वर्षों से आपकी पत्रिका इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए का नियमित पाठक हूँ। सच कहूँ तो, इस पत्रिका ने विज्ञान को मेरे लिए केवल एक विषय नहीं, बल्कि एक रोमांचक अनुभव बना दिया है। विशेष रूप से रोबोटिक्स और एआई पर आधारित आपके लेख इतने सरल होते हैं कि मुझ जैसे स्कूली छात्र को भी जटिल तकनीकें आसानी से समझ आ जाती हैं। इस शानदार पहल के लिए आपकी पूरी टीम को बधाई। यह पत्रिका वाकई हिंदी माध्यम के छात्रों के लिए किसी वरदान से कम नहीं है।

सचिन पटेल, भोपाल

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के नवीनतम अंक को पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता हुई। आज के दौर में जहाँ सूचनाओं की भरमार है, वहाँ आपकी पत्रिका तथ्यों की शुद्धता और लेखों की गुणवत्ता को प्राथमिकता देती है, जो सराहनीय है। हिंदी भाषा में उच्च स्तरीय तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, जिसे आप लोग बखूबी अंजाम दे रहे हैं। पत्रिका का लेआउट और चित्रों का चयन विषय को और भी प्रभावी बनाता है। आशा है कि आप भविष्य में भी इसी प्रकार वैज्ञानिक चेतना का प्रसार करते रहेंगे।

डॉ. विकास शर्मा, कानपुर

मैं आपकी पत्रिका के माध्यम से विज्ञान को घर-घर पहुँचाने के आपके प्रयासों की सराहना करना चाहता हूँ। मेरे घर में 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' का हर महीने बेसब्री से इंतज़ार रहता है। विज्ञान को किताबी बोझ से हटाकर व्यावहारिक बनाना आपकी पत्रिका की सबसे बड़ी खूबी है। ऐसी उत्कृष्ट सामग्री के लिए आपका धन्यवाद।

राजेश खत्री, नई दिल्ली

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' का हर अंक ज्ञान का नया द्वार खोलता है। जटिल से जटिल वैज्ञानिक सिद्धांतों को मातृभाषा हिंदी में इतनी सहजता से प्रस्तुत करना वाकई अद्भुत है। विज्ञान और तकनीक के शौकीनों के लिए यह पत्रिका एक अनिवार्य संसाधन है।

दिलीप पाठक, भोपाल

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' पत्रिका ने हिंदी माध्यम में विज्ञान संप्रेषण के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय मानक स्थापित किया है। इसके लेख न केवल पाठ्यक्रम से जुड़े होते हैं, बल्कि नवाचार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी प्रोत्साहित करते हैं। मैं इस दीर्घकालिक और सतत प्रकाशन प्रयास के लिए पूरी संपादकीय टीम की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ।

विनीत ठाकुर, भोपाल

आर्टेमिस-2
चाँद पर अन्वेषण



डॉ. पीयूष गोयल

मनुष्यों को फिर से चाँद पर पहुंचाने के उद्देश्य से अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने 53 वर्षों बाद आर्टेमिस अभियान (मिशन) की शुरुआत की है। वर्ष 2022 में हुआ आर्टेमिस-1 अभियान एक बिना मनुष्यों वाला परिक्षण अभियान था। 2026 के इस आर्टेमिस-2 अभियान के अंतर्गत सभी चारों अंतरिक्ष यात्रियों, कमांडर रीड वाइसमैन, विक्टर ग्लोवर (पृथ्वी की निम्न कक्षा से परे यात्रा करने वाले पहले अश्वेत पायलट), क्रिस्टीना कोच (चंद्रमा के चारों ओर चक्कर लगाने वाली पहली महिला) और जेरेमी हैनसेन (कनाडाई अंतरिक्ष यात्री) को चंद्रमा के चारों ओर उड़ान भरना था। यह अभियान चंद्रमा पर उतरने का नहीं था, बल्कि इस अभियान में पृथ्वी की कक्षा में ओरियन कैप्सूल को मैन्युअल रूप से उड़ाना, अंतरिक्ष यान की सुरक्षा, प्रणोदन, संचार, विद्युत और नेविगेशन प्रणालियों का परिक्षण तथा जीवन समर्थन प्रणाली की जांच आदि करना शामिल है, जिससे अगले आर्टेमिस-3 अभियान में चंद्रमा पर सुरक्षित उतरने के उपाय सुनिश्चित किए जा सके। आर्टेमिस-3 अभियान में चंद्रमा पर फिर से मानव को पहुंचाना है, तथा आर्टेमिस-4 के तहत अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से चंद्रमा पर एक स्थाई स्टेशन का निर्माण और मंगल गृह अभियान की तैयारी करने की योजना शामिल है। नासा ने अपने अपोलो कार्यक्रम के तहत वर्ष 1969 से वर्ष 1972 के बीच कई मानव अभियान चंद्रमा पर शुरू किए थे। अपोलो-11 अभियान के दौरान अंतरिक्ष यात्री नील आर्मस्ट्रांग और बज़ एल्ड्रिन चंद्रमा की सतह पर कदम रखने वाले प्रथम मनुष्य बने थे। इसके बाद कुल 6 अभियानों में अंतरिक्ष यात्रियों ने चन्द्रमा पर उतर कर वैज्ञानिक अध्ययन किए। अपोलो अभियान के तहत कुल 24 अंतरिक्ष यात्री चंद्रमा पर जा चुके हैं, उनमें से 12 ने इसकी सतह पर कदम रखा है। चंद्रमा पर जा चुके इन 24 एस्ट्रोनॉट में पांच अभी जीवित हैं। वर्ष 1972 में अपोलो-17 अभियान के बाद आर्थिक और तकनीकी कारणों से चंद्रमा पर मानव अभियान बंद कर दिए गए थे।

आर्टेमिस-2 अभियान को नासा के द्वारा गुरूवार 1 अप्रैल, 2026 को (भारतीय समयानुसार 2 अप्रैल, 2026 को सुबह 3:54 आईएसटी) को अमेरिका के फ्लोरिडा स्थित कैनेडी अंतरिक्ष केंद्र (स्पेस सेंटर) से प्रक्षेपित (लांच) किया गया था। जैसे ही आर्टेमिस-2 ने उपरी वायुमंडल में प्रवेश किया, ओरियन कमांडर वाइसमैन ने घोषणा कर इसे एक शानदार दृश्य बताया। आधिकारिक तौर पर चालक दल ने कक्षा में प्रवेश तब किया जब उन्होंने 'कारमन रेखा' को पार किया, जो पृथ्वी के वायुमंडल और अंतरिक्ष के बीच की सीमा है। पृथ्वी से इन चारों अंतरिक्ष यात्रियों को यह यात्रा इतनी दूर ले गई थी, जहाँ अभी तक कोई



अपोलो-11 अभियान में चंद्रमा पर उतरे नील आर्मस्ट्रांग



आर्टेमिस-2 अभियान की ओरियन कैप्सूल से चंद्रमा का दीदार करने पहुंचे अमेरिकी एस्ट्रोनॉट



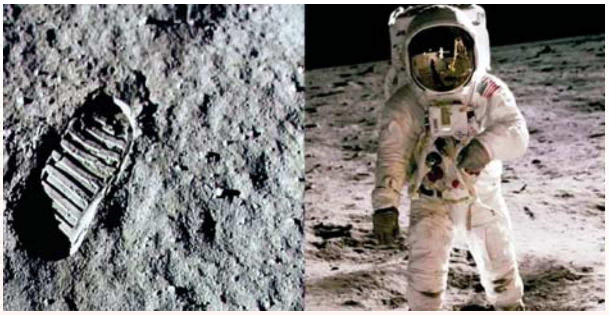
आर्टेमिस-2 के द्वारा 6 अप्रैल, 2026 को चंद्रमा के पीछे पृथ्वी के अस्त होने का दृश्य और चंद्रमा पर स्थित वाविलोव क्रेटर की छवि

भी मनुष्य नहीं पहुंचा है। आर्टेमिस-2 ने पृथ्वी से अब तक की सबसे लंबी दूरी तय करते हुए अधिकतम दूरी 252,756 मील (406,771 किलोमीटर) की यात्रा की है, जिसने वर्ष 1970 के अपोलो-13 अभियान के द्वारा पृथ्वी से बनाई गई दूरी के रिकॉर्ड को तोड़ दिया है। लगभग 10 दिनों की यात्रा वाले इस आर्टेमिस-2 अभियान पर गए सभी अंतरिक्ष यात्री शुक्रवार 10 अप्रैल, 2026 को सुबह 5:37 बजे (अमेरिकी समयानुसार 11 अप्रैल, 2026 को 01:07 बीएसटी) पर अमेरिका के पश्चिमी तट से दूर प्रशांत महासागर में सुरक्षित उतरे, जिसे अंतरिक्ष की भाषा में 'स्प्लैश डाउन' कहा जाता है।

आर्टेमिस-2 अभियान अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा का एक बेहद अहम अभियान है। नासा के अनुसार ओरियन स्पेसक्राफ्ट पर कुल 32 कैमरे और 70 फोटो-विडियो लेने वाले उपकरण लगे हुए थे। स्पेसक्राफ्ट पर 15 बाहरी कैमरे, सौर पैनलों की तैनाती (सोलर एरे डिप्लॉयमेंट) जो प्रक्षेपण और चाँद के चारों ओर यात्रा के दौरान महत्वपूर्ण पलों को रिकॉर्ड कर रहे थे। अभियान से जुड़े चालक दल ने यान के अन्दर लगे 17 उपकरणों, निकॉन डी5 डीएसएलआर, निकॉन जेड 9 मिररलेस कैमरा, गोप्रो आदि की मदद से तस्वीरें ली हैं। इन सभी कैमरों की मदद से उन्होंने ऐसी तस्वीरें लीं हैं, जिसमें उत्तरी और दक्षिणी दोनों ओर की ध्रुवीय ज्योति या मेरु ज्योति (ऑरोरा या पोलर लाइट्स) भी एक साथ दिखाई दीं हैं। यह सभी उपकरण इंजीनियरिंग, नेविगेशन और चालकदल की निगरानी और चंद्रमा से जुड़े विज्ञान तथा बाहरी गतिविधियों में मदद कर रहे थे। नासा के अनुसार आर्टेमिस-2 की कुछ शुरूआती तस्वीरों को 1968 में अपोलो 8 अभियान के दौरान बिल एंडर्स के द्वारा ली गई प्रसिद्ध पृथ्वी उदय (अर्थ राइज) से जोड़कर देखा गया है, जो उस समय हैसलब्लैड फिल्म कैमरा और 250 मिमी लेंस के द्वारा ली गई थी, जबकि आर्टेमिस-2 के अंतरिक्ष यात्रियों के पास 80-400 मिमी टेलीफोटो लैंस और बेहतर डिजिटल कैमरे उपलब्ध थे, परन्तु उड़ान की गति और समय की वजह से ठीक वैसी तस्वीर दोबारा लेना काफ़ी चुनौतीपूर्ण रहा है।

आर्टेमिस-2 ने 1972 के बाद पृथ्वी की कक्षा के बाहर शानदार तस्वीरें लेते हुए चंद्रमा की आधी यात्रा पूरी की है, जिसमें पहली महिला क्रिस्टीना कोच, पहले अश्वेत व्यक्ति ग्लोवर और पहले गैर अमेरिकी हैनसेन शामिल थे। आर्टेमिस-2 अभियान की ओरियन कैप्सूल में कितनी खिड़कियाँ थीं, यह तो पता नहीं, पर इसके अन्दर बैठे अंतरिक्ष यात्रियों ने अपनी दोनों आँखों से प्रत्यक्ष रूप से चाँद का सुंदर दीदार किया है। केबिन के अंदरूनी दृश्य को भी चालकदल ने हर कोंण से कैद किया है। कुछ तस्वीरें स्मार्टफोन से भी ली गई हैं, जो अंतरिक्ष उड़ान के लिए पहली बार मंजूर हुए हैं। एक ख़ास ऑप्टिकल नेविगेशन कैमरे ने भी पृथ्वी और चाँद की तस्वीरें लेकर स्पेसक्राफ्ट को गहरे अंतरिक्ष में अपनी स्थिति तय करने में सहायता प्रदान की है।

अपोलो अभियान के बाद मनुष्य हालांकि चंद्रमा पर तो नहीं लौटा, परन्तु उन्होंने अंतरिक्ष की खोज जारी रखी है। यहाँ एक अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन का निर्माण हुआ है, जो अंतरिक्ष अनुसन्धान का एक महत्वपूर्ण केंद्र है, जिसमें अंतरिक्ष का करीब से अध्ययन किया जा सकता है। भारत के चंद्रयान-1 (2008) अभियान के द्वारा चंद्रमा की सतह पर पानी के अणुओं की खोज की गई थी। चंद्रयान-2 (2019) का लैंडर (विक्रम) सतह पर टकरा कर (क्रैश) हो गया था,



चंद्रमा पर बज़ एल्ड्रिन के पदचिन्ह



'ओरियन कैप्सूल' में स्प्लैश डाउन होते अंतरिक्ष यात्री

पर ऑर्बिटर अभी भी चंद्रमा की कक्षा में सक्रिय है, और डेटा भेज रहा है। चंद्रयान-3 अभियान अब तक का सबसे सफल अभियान रहा है, जो 23 अगस्त, 2023 को चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर सफलतापूर्वक उतरा था। यह ऐतिहासिक अभियान एक मील का पत्थर साबित हुआ है, जिससे भारत विश्व में दक्षिणी ध्रुव पर उतरने वाला पहला देश बन गया है। जिस स्थान पर चंद्रयान-3 उतरा था, उस स्थान को 'शिवशक्ति बिंदु' के नाम से जाना जाता है। चंद्रमा पर पहले भी बज़ एल्ड्रिन के पदचिन्हों वाले उथले गड्ढे को 'शांति के सागर' नाम से जाना जाता है।

आर्टेमिस-2 के अंतरिक्ष यात्रियों ने अपोलो-8 से प्रेरणा लेते हुए चंद्रमा पर मौजूद दो छोटे-छोटे गड्ढों के लिए बेहद व्यक्तिगत नाम 'इंटीग्रिटी' और दूसरे का नाम कमांडर रीड वाइसमैन की दिवंगत पत्नी 'कैरोल' के नाम पर रखने की अनुमति मांगी थी, जिनका वर्ष 2020 में कैंसर से निधन हो गया था। ओरियन अंतरिक्ष यान पर एक चंद्र गड्ढे को 6 अप्रैल 2026 को वाइसमैन की पत्नी के सम्मान में कैरोल नाम प्रस्तावित किया गया। आने वाले समय में अब जब तक फिर से मानव के पदचिन्ह चंद्रमा पर नहीं पढ़ेंगे, चंद्रमा पर उथले गड्ढों के नाम भी ऐसे ही पढ़ते रहेंगें, और एक आशा की किरण भी बरकरार रहेगी, जो किसी देश के मानव हित में किए गए कार्य, किसी के शौर्य, किसी की याद, किसी की उम्मीदें और किसी के प्रयास को चिन्हित करती रहेंगीं। भारतीय अंतरिक्ष एजेंसी (इसरो) अब चंद्रयान-4 की तैयारी कर रहा है, जिसका लक्ष्य चंद्रमा से नमूने (सैम्पल्स) वापस लाना है। वर्ष 2040 तक इसरो का चंद्रमा पर (गगनयान कार्यक्रम के साथ तालमेल) के साथ भारतीय अंतरिक्ष यात्री को चंद्रमा पर भेजने का भी लक्ष्य है।

अपोलो-17 के बाद पहली बार अंतरिक्ष यात्रियों को चंद्रमा पर उतारने के नियोजित प्रयास के लिए यह दस दिवसीय अभियान एक पूर्वाभ्यास है। आर्टेमिस-2 के कमांडर रीड वाइसमैन ने 2 अप्रैल 2026 को ट्रांसलूनर इंजेक्शन पूरा करने के बाद ओरियन अंतरिक्ष यान की एक खिड़की से पृथ्वी की एक तस्वीर ली, जिसमें दो अरोरा (ऊपर दाएँ और नीचे बाएं ओर) और राशि चक्र प्रकाश (नीचे दाई ओर) दिखाई दी है, क्योंकि पृथ्वी, सूर्य को ग्रहण लगा रही थी। चंद्रमा के सुदूर भाग की इस यात्रा ने विश्व को अमेरिका की एक सर्वोत्तम छवि की झलक दिखाई है, जिसने अमेरिका के नेतृत्व वाले संघर्ष, शुल्क और टूटते वैश्विक रिश्तों को लेकर फैली वैश्विक निराशा और असंतोष में एक राहत और मानवहित की दिशा दिखाई देती है। पृथ्वी पर वर्तमान की दशा-दिशा कुछ ऐसी ही है, जिसमें बढ़ते तापमान, अनिश्चितता और आधिपत्य का ग्रहण लगा हुआ है। शांति के लिए उठाए गए यह कदम एक और ग्रह पर जीवन की तलाश को पूरा करने में लगे हैं। वर्तमान में पृथ्वी पर टूटते मानवीय कृत्यों और अंतर्राष्ट्रीय रिश्तों तथा पर्यावरण असंतुलन और आपदाओं के अभिशाप से शायद भविष्य में चंद्रमा पर एक सुरक्षित स्थान और आवास मिल सके।

वरिष्ठ विज्ञान लेखक और संचारक। देहरादून स्थित यूसीओएसटी में मानद वैज्ञानिक के रूप में कार्यरत और इस परिषद के अंतर्गत अनुसंधान एवं विकास तथा अन्य वैज्ञानिक गतिविधियों के संचालक। आप नई दिल्ली स्थित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अंतर्गत डीबीटी में जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रम तथा अन्य गतिविधियों से जुड़े रहे।

peyushgoyal@gmail.com

परंपरागत ज्ञान में निहित पर्यावरण संरक्षण की प्रेरणा



अनुपमा गोरे

पर्यावरण और मानव जीवन का रिश्ता हजारों साल पुराना है। भारत के वन, उनमें स्वच्छंद विचरण करते पशु-पक्षी, नदियां और ऊंचे पहाड़ प्रकृति के अनोखेपन को बयां करते हैं। इनके बीच रहते सदियों से वास करते इंसानों का इनसे सहज लगाव होता गया। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन और मध्य युग में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के बजाय उनके संरक्षण पर मनुष्य ने अधिक जोर दिया है। देश के अनेक जन समुदायों ने प्रकृति और पर्यावरण से जुड़े ज्ञान को अपनी परंपराओं और संस्कृति का अहम हिस्सा बनाया ताकि इनकी सौगात बची रहे आने वाली पीढ़ियों के लिए। भारत के अनेक हिस्सों में रहने वाले हमारे पूर्वजों ने ऐसी ही परंपराओं की सौगात हमें विरासत में दी है। ये परम्पराएं प्रकृति से प्रेम और आदर की भावना को बढ़ावा देती हैं। अब जिस रिश्ते में प्रेम और आदर का भाव होगा तो वहां दोहन का कोई स्थान नहीं बचेगा। प्रकृति और पर्यावरण से आबद्ध इन परंपरागत ज्ञान का यही आधार होता है। यह ज्ञान हमारे रीति-रिवाजों में रच-बसकर जाने-अनजाने हमें प्रकृति और पर्यावरण को सहेजने की प्रेरणा देते रहते हैं। आज के दौर में जब न सिर्फ हमारा देश बल्कि समूची दुनिया पारिस्थितिकी असंतुलन और पर्यावरणीय विघटन के दोराहे पर खड़ी है, ऐसे में हमारी इन परंपरागत ज्ञान से जुड़ी विरासत को समझना और उन्हें अपने जीवन में उतारना बेहद जरूरी हो जाता है।

पर्यावरण से संबंधित परंपरागत ज्ञान

परम्परागत ज्ञान हमें प्रकृति के महत्व और पर्यावरण की हिफाजत से जोड़ता है। हम अपनी परंपराओं में सूर्य, हवा, पानी, भूमि और पेड़ों की उपासना करते हैं। पशु-पक्षियों की रक्षा करना सदियों से हमारी संस्कृति का हिस्सा है। प्रकृति इन सबसे मिलकर बनी है और हम मनुष्यों का अस्तित्व इनसे गहरे जुड़ा हुआ है, इस बात से हम मुंह नहीं फेर सकते। संस्कृत, पाली जैसी भाषाओं में लिखे प्राचीन साहित्य में इनके बारे में बात की गई है। चारों वेदों में प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण के संदेश मिलते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर वैदिक साहित्य में लिखी ये बातें सच साबित हो रही हैं कि पृथ्वी पर ऊर्जा और जीवन का मुख्य जरिया सूर्य का प्रकाश है। इसके साथ यह बात भी सत्यापित हो जाती है कि प्राचीन काल में लोगों को उन बातों का ज्ञान था जिन्हें आज विज्ञान अपनी व्याख्या के साथ सही ठहराता है।





भारत सांस्कृतिक रूप से बेहद समृद्ध देश है। यहां के भूगोल और जलवायु में भी विविधता के दर्शन होते हैं। अलग जलवायु में रहने वाले जन समुदाय की सामाजिक संरचना और जीविका वहां के पर्यावरण पर निर्भर करती है। इसलिए पर्यावरण से जुड़े सरोकार उनकी संस्कृति और परम्पराओं का अटूट हिस्सा बन जाते हैं।

मनुस्मृति में तमाम विशेषताओं के आधार पर पौधों का विधिवत वर्गीकरण भी किया गया है। इसी ग्रन्थ में पेड़-पौधों में चेतना पाए जाने का उल्लेख मिलता है। उनमें बताया गया है कि मनुष्यों के समान पौधे को भी खुशी और दर्द का अहसास होता है। भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु ने इस ग्रन्थ के लिखे जाने के लगभग 2000 साल बाद अपने प्रयोगों के माध्यम से इस बात को प्रमाणित किया कि पौधों में संवेदना पाई जाती है।

कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में वन्य जीवों के लिए अभ्यारण्य जैसे सुरक्षित स्थान के होने के साथ-साथ वन्य जीवों के शिकार और पेड़-पौधों को काटने पर सजा के प्रावधान का भी उल्लेख किया है। इस तरह हम देखते हैं कि हमारी प्राचीन परंपराओं में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की भावना छिपी हुई है। आज भी हम अनेक प्रकार के धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के दौरान पर्यावरण की रक्षा का संकल्प दोहराते हैं।

हमारी परम्परा की पूंजी देव वन

हमारे देश में असंख्य जनजातियां आज भी अपनी परम्पराओं के अनुसार प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग और उनकी सुरक्षा करते हैं। जनजातीय समुदाय गांव के किनारे देव वन का निर्माण करते हैं। इस वन में उस इलाके में पाए जाने वाले स्थानीय महत्व के पेड़-पौधों को लगाया जाता है। वे लोग उन पेड़-पौधों और फूलों की पूजा करते हैं। इस स्थान को वे देवी-देवताओं और अपने पूर्वजों की आत्मा का वास मानते हैं। इसलिए इस जगह को पवित्र और सुरक्षित माना जाता है। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के अनेक जिलों और उनके गांवों में ऐसे देव वन पाए जाते हैं। देव वनों में अक्सर अर्जुन, बेल, तुलसी और मदार के पौधे लगाये जाते हैं। जनजातीय मान्यता के अनुसार अर्जुन के पेड़ पर ब्रह्मा, बेल पर भगवान शिव, तुलसी के पौधे पर देवी लक्ष्मी और मदार पर भगवान शिव का वास होता है। इन देव वनों के विचार से ही प्रेरित होकर ही शायद वन्य जीवों और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की मुहीम को गति दी गई हो और आगे चलकर राष्ट्रीय उद्यान और बायोस्फियर रिजर्व बनाये गए।

जनजातियां : फसलों के संरक्षक

मणिपुर, मेघालय और असम जैसे उत्तर पूर्वी भारत के राज्यों में रहने वाली मानव जनजातियों ने चावल, मक्का, बाजरा और दालों के साथ-साथ फलों और सब्जियों की अनेक प्राकृतिक नस्लों का प्राकृतिक संरक्षण किया है। उत्तर पूर्वी राज्यों की कुरिच्या, परियार, खासी, जतिन और गारो जनजातियों ने चावल के चम्पारा, पत्ताम्बी और वल्साना जैसी स्थानीय महत्वपूर्ण नस्लों को सहेज कर रखा है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार और उड़ीसा की जनजातियों ने भी चावल की तकरीबन 150 प्राचीन जंगली नस्लों को नष्ट नहीं होने दिया है। ये जंगली नस्ल अनाज के दाने की गुणवत्ता, खुशबू, प्रोटीन की मात्रा और पाचन के मामले में मौजूदा आधुनिक नस्लों की तुलना में आनुवंशिक तौर पर बेहतर होती हैं। इसके अलावा, जंगली नस्ल के पौधों में कीट और बीमारियों से लड़ने की अपार क्षमता भी पाई जाती है। सरकार के हस्तक्षेप से जनजातियों के सहयोग से चावल की इन जंगली नस्लों और आधुनिक नस्लों को मिलाकर अच्छी गुणवत्ता के चावल उगाने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस दिशा

में सेंट्रल राइस रिसर्च इंस्टिट्यूट, कटक और इंटरनेशनल राइस रिसर्च इंस्टिट्यूट, फिलिपिन्स के राइस ब्रीडर महत्वपूर्ण काम कर रहे हैं।

देश के जनजातीय समूहों ने सदियों से फल, बीज, कंद, मूल की असंख्य जंगली प्रजातियों को सहेज कर रखा है। वे इन्हें अनेक पीढ़ियों से खाने के उद्देश्य से उगाते चले आ रहे हैं। इनकी परंपरा में बेल, सुरन, चिड़चिड़ा, सेहर, काली मूसली, रतालू जैसे पौधों के फल, तनों, पत्तियों, जड़ों और बीजों को खाने के लिए उपयोग किया जाता है। यहां एक बात गौर करने की है। ये जनजातियां इन पौधों को उगाने और उनकी परवरिश के दौरान पर्यावरण का संरक्षण भी हो, ऐसी समझदारी भी दर्शाते हैं। जैसे कि किसी लता को इस्तेमाल में लाना है तो वे उसकी पत्तियों के पीला होने तक इन्तजार करते हैं। इसके अलावा जनजातियां प्रकृति की सुरक्षा को लेकर इस कदर सम्वेदनशील होती हैं कि वे जब जंगली मूल को मिट्टी के भीतर से बाहर निकालती हैं तो इतनी सावधानी रखते हैं कि आस-पास के पौधों को कोई नुकसान ना होने पाए।

भारत के अनेक राज्यों के जनजातीय समूह सदियों से असंख्य रोगों के लिए जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल करते आये हैं। आज के समय में उन पौधों के औषधीय महत्व को पूरी दुनिया स्वीकार कर रही है। औषधीय पौधों के अनेक उदाहरण हैं। बौहिनिया परपुरिया, सीडा एक्यूटा, जट्रोफा कुर्कुस, ग्रेविया हर्सुटम जैसे औषधीय पौधों को बुखार, सिर दर्द, शरीर में सूजन और मांसपेशीय दर्द में राहत के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इक्विसिटम और आर्जीमोन जैसी पौध प्रजातियों को त्वचा से जुड़े रोगों के इलाज में प्रयोग करते हैं। वांडा टेसाला और अल्टरनान्थेरा जैसे पौधों के तने और पत्तियों को कासिया अडनाटा, सीडा कार्डाटा और बौहिनिया परपुरिया की जड़ों के साथ मिलाकर एक पेस्ट बनाया जाता है। इस पेस्ट का इस्तेमाल जनजातिय समुदाय बरसों से हड्डी के टूटने के उपचार में करते आए हैं। इसके इस्तेमाल से 10-15 दिनों के अंदर तबियत में सुधार आ जाता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इन पौधों के औषधीय महत्व की जांच करके पता लगाया और यह पाया कि आर्थोपेडिक उपचार में ये उपयोगी हैं।

भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, और दक्षिण भारत के राज्यों में स्थानीय जन समुदाय स्थानांतरित



कृषि या झूम कृषि प्रणाली अपनाता है। इस कृषि प्रणाली में जंगल के पेड़ों को जलाकर उसकी राख को मैदान में फैला दिया जाता है क्योंकि पौधे के सभी पोषक तत्व उस राख में मौजूद रहते हैं। इस भूमि में एक साल खेती नहीं की जाती है और इस दौरान किसान नजदीक की खाली भूमि में खेती करते हैं। जिस खेत को छोड़ कर रखा जाता है, उसकी मिट्टी खेती के लिहाज से बेहद उर्वर हो जाती है। अगले साल उस भूमि में खेती करने से उपज में इजाफा होता है। झूम प्रणाली के दौरान स्थानीय जनजाति अपने परंपरागत ज्ञान के अनुसार जंगल में मौजूद आम, नारंगी, केला, मक्का, गन्ना और बेरी जैसे उद्यान और कृषि महत्व के पेड़-पौधों को नहीं जलाते ताकि इनकी नस्लों को नुकसान ना पहुंचे।

पशु-पक्षियों के संरक्षण की समृद्ध परंपरा

हमारी संस्कृति और परंपरागत ज्ञान प्रणालियों में न केवल पेड़-पौधों बल्कि वन्य जीवों और यहां तक कि पालतू पशुओं को भी आदर की भावना से देखा गया है। जहां आदर का भाव जुड़ जाए, वहां पर उनका संरक्षण लोग अपना कर्तव्य समझने लगते हैं। शेर, बाघ, हाथी, घोड़ा, मोर, उल्लू, चूहे, सांप जैसे अनेक जन्तुओं को धार्मिक मान्यताओं में आदर का सूचक माना गया है। इसी तरह सांप जैसे विषैले जंतु को धार्मिक आस्था से जोड़ने के पीछे इनके संरक्षण की भावना भी रही है। हम सभी जानते हैं कि प्रकृति की खाद्य श्रृंखला में सांप एक अहम कड़ी होता है। यह जीव पारिस्थितिकी संतुलन को कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रकृति में अगर सांप की आबादी कम हो जाए तो चूहों की संख्या इतनी बढ जाएगी कि वे हमारी कृषि उपज का एक बड़ा हिस्सा नष्ट करके हमें भारी नुकसान पहुंचा सकते हैं। देश के अनेक हिस्सों में कुछ सम्प्रदायों ने अपनी परम्पराओं के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों की हिफाजत को

जोड़ा है। मध्य युग में राजस्थान में बिश्नोई नाम का एक सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय के लोगों ने अपने इलाके में पेड़ों को काटने पर पूरी तरह पाबंदी लगा रखी थी। ये लोग राजस्थान के खेजराली गांव के निवासी थे और इसलिए वहां पाए जाने वाले पेड़ों को खेजड़ी कहते हैं। इस खेजड़ी पेड़ की सुरक्षा को लेकर एक इतिहास प्रसिद्ध घटना है। 1730 ई. में मारवाड़, जोधपुर के शासक महाराजा अभय सिंह अपने नये महल के निर्माण के लिए खेजरी के वृक्षों को काटना चाहते थे। थार के मरुस्थल के बावजूद उस जमाने में वहां पर काफी हरियाली थी और खेजरी वृक्ष बहुतायत में थे। महाराजा ने आदेश दिया कि जब रात में सभी गांव वाले सो रहे हों तब जाकर सभी पेड़ काट दिए जाएं। उस रात पर्यावरण प्रेमी अमृता देवी को इस बात की भनक लग गई और वह राजा के सैनिकों और काटे जाने वाले पेड़ों के बीच में आ गई और पेड़ों से लिपट गईं। उन्होंने सैनिकों से कहा कि अगर एक पेड़ को बचाने के लिए एक आदमी की जान चली जाती है तो ऐसा करना उचित है। उसी समय उन्होंने स्वयं की और अपनी तीन बेटियों (आसू, रत्नी और भागू) की जान की आहुति दे दी। उस घटना के दौरान कुल 363 जानें गई थीं जिसमें बूढ़े, जवान, महिलाएं, नवविवाहित युगल और बच्चे तक शामिल थे। पेड़ों की रक्षा के लिए मानव जाति की यह कुर्बानी इतिहास में दर्ज हुई।



खेजड़ी वृक्ष का यूं ही नहीं परंपरागत महत्व है। इसके अनेक फायदे हैं. एक तो यह राजस्थान की गर्म जलवायु और रेतीले वातावरण में भी हरा भरा रहता है। यहां के स्थानीय निवासी बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए खेजड़ी की पत्तियों को आर्गेनिक पदार्थ के तौर पर इस्तेमाल करते हैं। इसके अलावा, गर्भवती महिलायें सदियों से खेजड़ी के फूलों को चीनी के साथ मिलाकर औषधि की तरह लेती हैं। इससे उन्हें गर्भपात नहीं होता। इस वृक्ष की छाल पेचिश, दमा, जुखाम और गठिया के इलाज में मददगार होती है।

पहाड़ी इलाकों के किसान अपने परंपरागत ज्ञान के आधार पर बारिश के पानी को व्यर्थ होने से बचाने के लिए छोटे-छोटे तालाब बना लेते हैं और इन तालाबों के पानी से खेतों की सिंचाई करते हैं। गढ़वाल की महिलाएं केवल विरासत में मिले परंपरागत ज्ञान कौशल के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था की सक्रिय भागीदार होती हैं। वे खाना पकाने, घर और बच्चों की देखभाल के साथ-साथ खेती और पशुपालन में भी बराबर भूमिका निभाती हैं। परिवार के पालन-पोषण के लिए वे सुबह से शाम तक पुरुषों से कहीं ज्यादा श्रम करती हैं।

पारंपरिक ज्ञान किसी न किसी संचार माध्यम से एक से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचती रहती है और इनका अस्तित्व बना रहता है। मगर वर्तमान समय में आधुनिकता की होड़ ने हमें जनजातीय समुदाय और अपनी स्थानीय परम्पराओं को लेकर उदासीन बना दिया है। इस उदासीनता के कारण हम इन परंपरागत ज्ञान से दूर होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में सरकारी और गैर सरकारी एजेंसियों द्वारा पहल किया जाना जरूरी है ताकि पर्यावरण से जुड़े परंपरागत ज्ञान और स्वदेशी संस्कृति को सहेजा जा सके। शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से इस ज्ञान को बढ़ावा मिलना भी बेहद जरूरी है। वैज्ञानिक भी इन परंपरागत ज्ञान से जुड़े शोध करके पर्यावरण और प्रकृति की देखभाल करने में अपना योगदान दे सकते हैं। वर्तमान समय में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, मिट्टी, हवा, पानी जैसे प्रकृति के दूसरे तत्वों के साथ तालमेल बैठाकर पृथ्वी को सहेजने की अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय प्रयास किए जा रहे हैं। पर्यावरण और विकास के इस परस्पर तालमेल को सतत विकास नाम दिया गया है। इस विकास को तय करने की जिम्मेदारी हम मनुष्यों की है। मिट्टी, पानी और जीवों के संरक्षण से जुड़े परंपरागत ज्ञान को भी हमें विस्तार देने की जरूरत है साथ ही इस महत्वपूर्ण और विशिष्ट ज्ञान और उसकी परंपरा को लेकर लोगों को जागरूक करने से पर्यावरण संरक्षण की भावना का प्रसार और पर्यावरण के प्रति लोगों में संवेदनशीलता बढ़ेगी।

युवा विज्ञान लेखिका हिंदी साहित्य में एम.ए. । बाल साहित्य लेखन के साथ ही विज्ञान लेखन भी। सामान्य जीवन से जुड़े विज्ञान और तकनीक की जानकारियों को रोचक भाषा-शैली में जस का तस रख देना आपके लेखन की खूबी। कई रेडियो कार्यक्रम की प्रस्तुति।

vartika28vedika5@gmail.com

सामयिक

फास्ट ब्रीडर रिएक्टर

भारत के परमाणु ऊर्जा का युगारंभ



भूपेन्द्र सिंह भदौरिया

परमाणु कार्यक्रम के जनक होमी जहांगीर भाभा

होमी जे. भाभा ने ये दार्शनिक और शक्तिशाली वाक्य आज़ादी के बाद के भारत के संदर्भ में कहे थे, जब देश यह तय कर रहा था कि विज्ञान, ऊर्जा और अनुसंधान में कितना निवेश किया जाए। भाभा का संदेश ये बताने का प्रयास कर रहा था कि ताक़त बनाने में आज किया गया निवेश भले ही महँगा लगे, लेकिन कमज़ोरी की क़ीमत कल कहीं ज्यादा चुकानी पड़ती है। जिस देश के पास ऊर्जा, तकनीक या रक्षा शक्ति नहीं होती, उसे बाद में ये चीज़ें ज्यादा कीमत पर खरीदनी पड़ती हैं–और अक्सर इसके लिए उसे राजनीतिक या आर्थिक समझौते भी करने पड़ते हैं। शक्ति के बिना, फ़ैसले परिस्थितियों और ज्यादा ताक़तवर लोगों द्वारा थोपे जाते हैं। जीवन में, ज्ञान, कौशल या आत्मविश्वास की कमी उन्हें हासिल करने में लगने वाली मेहनत से कहीं ज्यादा नुकसानदायक हो सकती है। इन्हीं विचारों और दूरदष्टि के साथ होमी जहांगीर भाभा ने आजादी के बाद ही उर्जा पर आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए भारत का परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की तीन-चरणीय योजना प्रस्तावित की थी। आज भी भारत इसी योजना के अंतर्गत कार्य कर रहा हैं। प्रारम्भ से ही होमी जहांगीर भाभा को ज्ञात हो चला था कि भारत में थोरियम की प्रचुर मात्रा होने के कारण परमाणु उर्जा कार्यक्रम थोरियम पर ही आधारित होना चाहिए।

तीन चरणीय परमाणु कार्यक्रम

भारत वर्तमान समय में ऊर्जा सुरक्षा, आत्मनिर्भरता और स्वच्छ ऊर्जा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिक विकास और ऊर्जा की लगातार बढ़ती मांग को देखते हुए देश को ऐसे ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता है जो दीर्घकालिक, सुरक्षित और पर्यावरण के अनुकूल हों। इसी दिशा में परमाणु ऊर्जा एक प्रभावी विकल्प के रूप में उभर रही है। विशेष रूप से थोरियम आधारित परमाणु ऊर्जा को भारत के भविष्य की ऊर्जा रणनीति का केंद्र माना जा रहा है, क्योंकि देश के पास विश्व के सबसे बड़े थोरियम भंडारों में से एक है। भारत का परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम महान वैज्ञानिक



होमी जहांगीर भाभा द्वारा प्रस्तावित तीन-चरणीय योजना पर आधारित है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य देश में उपलब्ध सीमित यूरेनियम संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए थोरियम को प्रमुख ईंधन के रूप में विकसित करना है।

पहले चरण में ये रिएक्टर प्रेशराइज्ड हेवी वाटर रिएक्टर (PHWR) का उपयोग करता है, जिसमें यूरेनियम-238 ईंधन के रूप में इस्तेमाल होता है। इस प्रक्रिया से बिजली उत्पन्न होती है और साथ ही प्लूटोनियम-239 भी बनता है। यह प्लूटोनियम आगे दूसरे चरण के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है।

दूसरे चरण में इसी प्लूटोनियम-239 को फास्ट ब्रीडर रिएक्टर में उपयोग किया जाता है। इस रिएक्टर में थोड़ी मात्रा में यूरेनियम-238 भी डाला जाता है। इस प्रक्रिया में न केवल बिजली उत्पन्न होती है, बल्कि साथ ही प्लूटोनियम और यूरेनियम-233 भी प्राप्त होता है। यही यूरेनियम-233 भविष्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि इसी की मदद से थोरियम को ईंधन के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

यही कारण है कि प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रिएक्टर (पीएफबीआर) की क्रिटिकलिटी प्राप्त करना इतनी बड़ी उपलब्धि मानी जा रही है। इसका अर्थ है कि अब भारत सफलतापूर्वक यूरेनियम-233 का उत्पादन करने की दिशा में आगे बढ़ चुका है। अब तीसरे चरण में भारत के पास पहले से मौजूद थोरियम और उत्पादित यूरेनियम-233 का उपयोग करके बड़े पैमाने पर बिजली उत्पादन किया जा सकेगा।

सरल शब्दों में कहें तो भारत की परमाणु ऊर्जा रणनीति ऐसी है कि हर चरण में बिजली उत्पादन के साथ-साथ अगले चरण के लिए ईंधन भी तैयार किया जाता है। पहले चरण में प्लूटोनियम बनता है, दूसरे चरण में यूरेनियम-233, और तीसरे चरण में थोरियम का उपयोग करके दीर्घकालिक और स्थायी ऊर्जा उत्पादन संभव होता है।

इस प्रकार भारत ने न केवल एक उन्नत तकनीक विकसित की है, बल्कि भविष्य की ऊर्जा सुरक्षा के लिए एक मजबूत और आत्मनिर्भर प्रणाली भी तैयार की है। यह उपलब्धि भारत को वैश्विक परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में एक अग्रणी देश के रूप में स्थापित करती है।

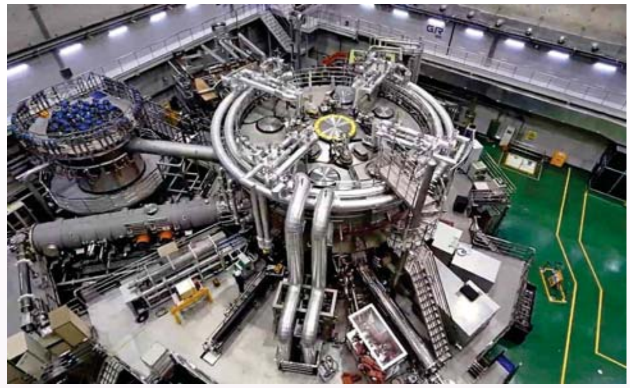
प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रिएक्टर

कल्पना कीजिए कि एक ऐसा न्यूक्लियर पावर प्लांट हो जो जितना ईंधन (फ्यूल) उपयोग करता है, उससे अधिक ईंधन स्वयं पैदा करता हो। सुनने में यह थोड़ा अजीब और असंभव लगता है, लेकिन भारत ने इसे संभव कर दिखाया है। तमिलनाडु के कलपक्कम में स्थित इस प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रिएक्टर की क्षमता लगभग 500 मेगावाट है और यह पूरी तरह से स्वदेशी तकनीक पर आधारित है। आज भारत की विभिन्न सरकारी और विदेशी सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर भी यही चर्चा हो रही है कि क्या कोई पावर प्लांट अपने उपभोग से अधिक ईंधन उत्पन्न कर सकता है? यह असंभव जैसा लगता है, लेकिन भारत ने यह कर दिखाया है।

क्रिटिकलिट प्राप्त करना

क्रिटिकलिटी परमाणु रिएक्टर के संचालन का वह महत्वपूर्ण चरण होता है जब रिएक्टर के भीतर नाभिकीय श्रृंखला अभिक्रिया स्वयं स्थिर रूप से चलने लगती है। इस अवस्था में न्यूट्रॉनों का उत्पादन और उनका ह्रास संतुलन में





आ जाता है, जिससे रिएक्टर लगातार ऊर्जा उत्पन्न करने में सक्षम हो जाता है। यह किसी भी परमाणु रिएक्टर के सफल संचालन का पहला और सबसे महत्वपूर्ण संकेत माना जाता है। पीएफबीआर की क्रिटिकलिटी यह दर्शाती है कि भारत अब उन्नत परमाणु प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ चुका है। इस रिएक्टर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह जितना ईंधन उपभोग करता है, उससे अधिक ईंधन उत्पन्न करता है। यही कारण है कि इसे 'ब्रीडर रिएक्टर' कहा जाता है। यह रिएक्टर प्लूटोनियम-239 का उपयोग करते हुए यूरेनियम-238 को अधिक प्लूटोनियम में परिवर्तित करता है और साथ ही थोरियम को यूरेनियम-233 में बदलने की दिशा में भी कार्य करता है। इस प्रकार यह रिएक्टर भविष्य के थोरियम आधारित रिएक्टरों के लिए आधार तैयार करता है। इस उपलब्धि के साथ भारत उन कुछ चुनिंदा देशों में शामिल हो गया है, जिनके पास फास्ट ब्रीडर रिएक्टर तकनीक विकसित करने की क्षमता है।

थोरियम आधारित परमाणु ऊर्जा भारत के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि देश में थोरियम के विशाल भंडार उपलब्ध हैं, विशेषकर तटीय क्षेत्रों में। थोरियम-232 स्वयं विखंडन योग्य (fissile) नहीं होता, लेकिन इसे न्यूट्रॉन के प्रभाव से यूरेनियम-233 में परिवर्तित किया जा सकता है, जो एक उत्कृष्ट विखंडनीय ईंधन है। थोरियम आधारित रिएक्टरों के कई लाभ हैं, जैसे कि यह अधिक सुरक्षित होते हैं, इनमें रेडियोधर्मी अपशिष्ट कम उत्पन्न होता है, और यह दीर्घकालिक ऊर्जा उत्पादन के लिए उपयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त, थोरियम ईंधन चक्र परमाणु प्रसार (nuclear proliferation) के जोखिम को भी कम करता है, जिससे यह वैश्विक स्तर पर भी एक सुरक्षित विकल्प माना जाता है।

फास्ट ब्रीडर रिएक्टर और अन्य रिएक्टरो में अंतर

प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रिएक्टर पारंपरिक परमाणु ऊर्जा संयंत्रों से कई महत्वपूर्ण तरीकों से अलग है। सबसे बड़ा अंतर यह है कि सामान्य परमाणु रिएक्टर केवल ईंधन (यूरेनियम) का उपयोग करके ऊर्जा उत्पन्न करते हैं और समय के साथ उनका ईंधन समाप्त हो जाता है, जबकि पीएफबीआर एक ऐसा रिएक्टर है जो जितना ईंधन उपयोग करता है, उससे अधिक ईंधन उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। इसी कारण इसे 'ब्रीडर रिएक्टर' कहा जाता है। यह विशेषता इसे पारंपरिक रिएक्टरों की तुलना में कहीं अधिक उन्नत और भविष्य के लिए उपयोगी बनाती है।

ईंधन के प्रकार के संदर्भ में भी पीएफबीआर अलग है। जहां सामान्य रिएक्टर प्राकृतिक यूरेनियम (विशेषकर यूरेनियम-235 और यूरेनियम-238) का उपयोग करते हैं, वहीं पीएफबीआर में मुख्य रूप से प्लूटोनियम-239 और यूरेनियम-238 का उपयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान यह न केवल ऊर्जा उत्पन्न करता है, बल्कि यूरेनियम-233 जैसे महत्वपूर्ण ईंधन का निर्माण भी करता है, जो भविष्य में थोरियम आधारित परमाणु ऊर्जा के लिए आवश्यक होता है।

तकनीकी दृष्टि से एक और महत्वपूर्ण अंतर न्यूट्रॉनों की गति से संबंधित है। पारंपरिक रिएक्टर 'धीमे' (थर्मल) न्यूट्रॉनों का उपयोग करते हैं और इनके लिए मॉडरेटर (जैसे भारी पानी) की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत पीएफबीआर 'तेज' (फास्ट) न्यूट्रॉनों का उपयोग करता है और इसमें किसी मॉडरेटर की आवश्यकता नहीं होती। यही कारण है कि इसे 'फास्ट' ब्रीडर रिएक्टर कहा जाता है।

फास्ट ब्रीडर रिएक्टर और पारंपरिक परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के बीच अपशिष्ट प्रबंधन के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण



अंतर होता है। पारंपरिक परमाणु रिएक्टरों में उपयोग के बाद काफी मात्रा में उच्च-स्तरीय रेडियोधर्मी अपशिष्ट उत्पन्न होता है, जिसमें बड़ी मात्रा में अप्रयुक्त यूरेनियम, प्लूटोनियम तथा अन्य दीर्घायु रेडियोधर्मी तत्व होते हैं। इस अपशिष्ट को लंबे समय तक सुरक्षित भंडारण और विशेष प्रबंधन की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह हजारों वर्षों तक रेडियोधर्मी बना रह सकता है।

इसके विपरीत, पीएफबीआर का डिज़ाइन इस प्रकार किया गया है कि वह परमाणु ईंधन का अधिकतम उपयोग कर सके। यह उन तत्वों को भी पुनः उपयोग में लाता है जिन्हें पारंपरिक रिएक्टर 'spent fuel' या अपशिष्ट मानते हैं। उदाहरण के लिए, पारंपरिक रिएक्टरों से निकले प्लूटोनियम और अप्रयुक्त यूरेनियम को पीएफबीआर में फिर से ईंधन के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इस कारण पीएफबीआर कुल रेडियोधर्मी अपशिष्ट की मात्रा को कम करने में सहायक होता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण अंतर यह है कि फास्ट ब्रीडर रिएक्टर लंबे समय तक जीवित रहने वाले कुछ रेडियोधर्मी समस्थानिकों (long lived actinides) को भी आंशिक रूप से 'जलाने' या रूपांतरित करने की क्षमता रखते हैं, जिससे अपशिष्ट की दीर्घकालिक रेडियोधर्मिता कम हो सकती है। इसका अर्थ है कि अंतिम अपशिष्ट की मात्रा और उसकी दीर्घकालिक खतरनाकता दोनों कम हो सकती हैं। हालांकि, यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि पीएफबीआर पूरी तरह अपशिष्ट-मुक्त नहीं होता। इससे उत्पन्न अपशिष्ट अभी भी रेडियोधर्मी होता है और उसके लिए विशेष प्रबंधन आवश्यक है।

चुनौतियाँ

हालांकि, थोरियम आधारित ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में अभी कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। सबसे बड़ी चुनौती यह है कि थोरियम को सीधे ईंधन के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता, बल्कि इसे पहले यूरेनियम-233 में परिवर्तित करना पड़ता है, जिसके लिए उन्नत तकनीक और जटिल प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, इस तकनीक के विकास में उच्च लागत, लंबे समय तक अनुसंधान और विशेष प्रकार के रिएक्टरों की आवश्यकता होती है। भारत इन चुनौतियों को पार करने के लिए निरंतर अनुसंधान और विकास कार्यों में निवेश कर रहा है, और विभिन्न अनुसंधान संस्थान इस दिशा में सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं।

भारत सरकार ने भविष्य में परमाणु ऊर्जा की क्षमता को बढ़ाने के लिए महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किए हैं। देश का लक्ष्य है कि आने वाले वर्षों में परमाणु ऊर्जा उत्पादन को कई गुना बढ़ाया जाए और इसे ऊर्जा मिश्रण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया जाए। यदि भारत अपने थोरियम कार्यक्रम में सफल होता है, तो यह न केवल अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा, बल्कि वैश्विक स्तर पर स्वच्छ और सतत ऊर्जा के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा सकेगा।

अंततः, कल्पक्कम में पीएफबीआर द्वारा क्रिटिकलिटी प्राप्त करना भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। यह उपलब्धि न केवल तकनीकी प्रगति का प्रतीक है, बल्कि यह देश के उज्ज्वल ऊर्जा भविष्य की दिशा में एक मजबूत कदम भी है। थोरियम आधारित ऊर्जा के क्षेत्र में भारत की यह प्रगति आने वाले समय में ऊर्जा आत्मनिर्भरता, पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास के नए आयाम स्थापित कर सकती है।

भूपेन्द्र सिंह भदौरिया ने इलेक्ट्रॉनिक्स और योजिक साइंस में एम.एससी. डिग्री हासिल की है। इलेक्ट्रॉनिक्स और योगा में स्नातकोत्तर होने के कारण आपके लेखन में एक ओर तकनीक के विश्लेषण का आग्रह है तो दूसरी ओर वैचारिक अनुशासन। यही कारण है कि आपके लेखन में एक विरल किस्म का वैज्ञानिक अनुराग देखा जा सकता है। विज्ञान लेखन के क्षेत्र में भूपेन्द्र ने अपनी सशक्त पहचान बना ली है।

bhupendrapirates@gmail.com

विकसित भारत @ 2047



विजन कुमार पांडेय

भारत आज इतिहास के एक ऐसे निर्णायक मोड़ पर खड़ा है, जहाँ उसके हर छोटे-बड़े फैसले की गूंज आने वाले 25 वर्षों तक सुनाई देगी। यह सिर्फ नीतियों का दौर नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण का वह समय है, जब हर कदम तय करेगा कि 2047 का भारत कैसा होगा। विकसित भारत@2047 केवल एक सरकारी अभियान नहीं, बल्कि 140 करोड़ भारतीयों का साझा सपना, संकल्प और भविष्य है-एक ऐसा भारत जो आर्थिक ताकत, तकनीकी क्षमता, सामाजिक समानता और वैश्विक नेतृत्व के शिखर पर खड़ा हो। 1947 में हमने राजनीतिक आज़ादी हासिल की थी, लेकिन 2047 का लक्ष्य उससे कहीं बड़ा है-आर्थिक स्वतंत्रता, तकनीकी आत्मनिर्भरता, ज्ञान में श्रेष्ठता और वैश्विक प्रभाव। आने वाले वर्षों में दुनिया उन देशों को नेतृत्व देगी, जो नवाचार, उद्योग, रक्षा, डिजिटल शक्ति और मानव संसाधन में सबसे आगे होंगे। भारत के पास यह अवसर भी है और क्षमता भी।

इस ऐतिहासिक यात्रा की सबसे मजबूत नींव है-आत्मनिर्भरता। आत्मनिर्भर भारत का अर्थ केवल देश में वस्तुएँ बनाना नहीं, बल्कि ऐसी व्यवस्था तैयार करना है जहाँ भारत अपने विचार, अपनी तकनीक, अपने संसाधन और अपनी प्रतिभा के बल पर दुनिया का नेतृत्व कर सके। जब भारत अपने रक्षा उपकरण, चिप्स, दवाइयाँ, ऊर्जा, तकनीक और डिजिटल प्लेटफॉर्म स्वयं विकसित करेगा, तभी वह वास्तव में मजबूत, सुरक्षित और सम्मानित राष्ट्र बनेगा। आज समय की मांग है कि भारत केवल दुनिया का सबसे बड़ा बाजार न बने, बल्कि दुनिया का सबसे बड़ा निर्माता, नवाचार केंद्र और समाधान देने वाला देश बने। विकसित भारत @2047 का सपना तभी साकार होगा, जब हर नागरिक यह महसूस करे कि वह केवल दर्शक नहीं, बल्कि इस परिवर्तन का सक्रिय भागीदार है।

आत्मनिर्भरता की ओर

आत्मनिर्भरता का अर्थ अक्सर गलत समझा जाता है। यह केवल 'सब कुछ खुद बनाने' तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका वास्तविक अर्थ है-अपनी क्षमता, संसाधनों और प्रतिभा का ऐसा विकास करना कि हम दुनिया के सामने आत्मविश्वास





के साथ खड़े हो सकें। आज भारत मोबाइल निर्माण, डिजिटल भुगतान और स्टार्टअप इकोसिस्टम में जिस तेजी से आगे बढ़ा है, वह उसकी आत्मनिर्भरता की झलक है। जब एक साधारण व्यक्ति अपने मोबाइल से सेकेंडों में भुगतान करता है, तो वह केवल सुविधा का उपयोग नहीं कर रहा होता, बल्कि वह भारत की तकनीकी शक्ति का हिस्सा बन रहा होता है। यही आत्मनिर्भरता का वास्तविक स्वरूप है-जहाँ आम आदमी भी विकास की प्रक्रिया में सहभागी बनता है।

आर्थिक दृष्टि से भारत का लक्ष्य बेहद महत्वाकांक्षी है-जो 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था से आगे बढ़कर 10 ट्रिलियन डॉलर की शक्ति बनना। लेकिन यह केवल आंकड़ों का खेल नहीं है, बल्कि यह हर भारतीय के जीवन स्तर से जुड़ा हुआ है। जब उद्योग बढ़ते हैं, तो रोजगार बढ़ता है; जब निर्यात बढ़ता है, तो आय बढ़ती है; और जब डिजिटल अर्थव्यवस्था मजबूत होती है, तो अवसर हर कोने तक पहुंचते हैं। 'Make in India' और 'Make for the World' जैसे अभियान केवल नीतियां नहीं हैं, बल्कि यह भारत को एक वैश्विक उत्पादन केंद्र बनाने की दिशा में उठाए गए निर्णायक कदम हैं। इसका सीधा लाभ उस युवा को मिलेगा, जो नौकरी की तलाश में है, और उस छोटे व्यापारी को भी, जो अपने उत्पाद को दुनिया तक पहुंचाना चाहता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है-'Make for the World' को सफल बनाने के लिए भारत को वास्तव में क्या करना होगा? केवल उत्पादन बढ़ा देना पर्याप्त नहीं है; वैश्विक बाजार में टिकने के लिए गुणवत्ता, प्रतिस्पर्धा और विश्वसनीयता के उच्चतम मानकों को अपनाना अनिवार्य है।

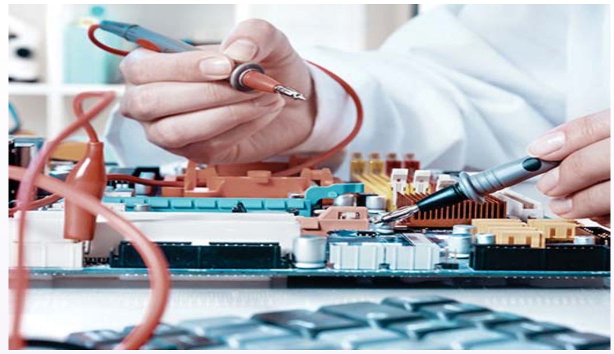
इसके लिए सबसे **पहला और महत्वपूर्ण कदम** है-गुणवत्ता पर समझौता न करना। वैश्विक बाजार में वही उत्पाद टिकते हैं, जो अंतरराष्ट्रीय मानकों पर खरे उतरते हैं। भारत को 'सस्ता उत्पादन केंद्र' की छवि से बाहर निकलकर 'उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों के भरोसेमंद निर्माता' की पहचान बनानी होगी। इसके लिए ISO जैसे वैश्विक मानकों का पालन, बेहतर डिजाइन, और निरंतर गुणवत्ता परीक्षण आवश्यक है। जब दुनिया 'Made in India' को गुणवत्ता का प्रतीक मानने लगेगी, तभी 'Make for the World' की असली सफलता होगी।

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है-लागत और प्रतिस्पर्धात्मकता। चीन, वियतनाम और बांग्लादेश जैसे देश पहले से ही वैश्विक निर्यात में मजबूत स्थिति में हैं। ऐसे में भारत को अपनी उत्पादन लागत कम करनी होगी। इसके लिए बेहतर लॉजिस्टिक्स, सस्ती बिजली, कुशल श्रम और आसान व्यापारिक प्रक्रियाएं जरूरी हैं। 'Ease of Doing Business' को जमीनी स्तर तक लागू करना होगा, ताकि एक छोटा उद्यमी भी बिना जटिलताओं के अपना उत्पाद वैश्विक बाजार तक पहुंचा सके।

तीसरा स्तंभ है-मजबूत सप्लाई चेन और इंफ्रास्ट्रक्चर। अगर उत्पादन भारत में हो, लेकिन उसे समय पर और सुरक्षित तरीके से दुनिया तक न पहुंचाया जा सके, तो पूरी प्रक्रिया कमजोर पड़ जाती है। इसलिए बंदरगाहों, रेलवे, सड़क नेटवर्क और वेयरहाउसिंग सिस्टम को विश्वस्तरीय बनाना अनिवार्य है। 'गति शक्ति' जैसी पहलें इसी दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। एक कुशल सप्लाई चेन भारत को 'विश्व का भरोसेमंद सप्लायर' बना सकती है।

चौथा और अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम है-नवाचार और तकनीकी उन्नयन। केवल पारंपरिक उत्पादों पर निर्भर रहकर भारत वैश्विक नेतृत्व नहीं कर सकता। हमें हाई-टेक सेक्टर-जैसे इलेक्ट्रॉनिक्स, सेमीकंडक्टर, ग्रीन टेक्नोलॉजी और फार्मा में निवेश बढ़ाना होगा। रिसर्च एंड डेवलपमेंट पर खर्च बढ़ाना और उद्योगों को नई तकनीक अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना समय की मांग है। जब भारत केवल





उत्पादन ही नहीं, बल्कि नवाचार का भी केंद्र बनेगा, तभी वह वैश्विक मूल्य श्रृंखला में ऊंचा स्थान प्राप्त कर सकेगा।

पांचवां पहलू है-ब्रांडिंग और वैश्विक पहचान (Brand India)। आज दुनिया के कई देशों ने अपने उत्पादों को एक ब्रांड के रूप में स्थापित किया है-जैसे 'Made in Germany' गुणवत्ता का प्रतीक है, 'Made in Japan' तकनीकी उत्कृष्टता का। भारत को भी 'Brand India' को मजबूत करना होगा। इसके लिए न केवल उत्पाद की गुणवत्ता, बल्कि उसकी प्रस्तुति, पैकेजिंग और मार्केटिंग भी महत्वपूर्ण है। अंतरराष्ट्रीय मेलों, डिजिटल प्लेटफॉर्म और ई-कॉमर्स के माध्यम से भारतीय उत्पादों को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करना होगा।

छठा और निर्णायक कारक है-कुशल मानव संसाधन। वैश्विक स्तर के उत्पाद बनाने के लिए केवल मशीनें ही नहीं, बल्कि कुशल और प्रशिक्षित मानव शक्ति भी आवश्यक है। स्किल डेवलपमेंट प्रोग्राम्स को उद्योग की जरूरतों के अनुरूप बनाना होगा। जब एक भारतीय श्रमिक या इंजीनियर वैश्विक मानकों के अनुरूप कार्य करेगा, तब भारत की उत्पादकता और विश्वसनीयता दोनों बढ़ेंगी।

सातवां पहलू है-नीतिगत स्थिरता और वैश्विक व्यापार समझौते। निर्यात को बढ़ावा देने के लिए सरकार को ऐसे व्यापार समझौते करने होंगे, जिससे भारतीय उत्पादों को अन्य देशों में आसान और सस्ता प्रवेश मिल सके। साथ ही, नीतियों में स्थिरता और पारदर्शिता निवेशकों के विश्वास को बढ़ाती है, जो 'Make for the World' के लिए आवश्यक है।

अंततः, 'Make for the World' केवल सरकार या उद्योगों की जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि यह एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण है। जब एक उद्यमी गुणवत्ता पर ध्यान देता है, एक श्रमिक अपने कौशल को सुधारता है, और एक नागरिक भारतीय उत्पादों को प्राथमिकता देता है-तब यह अभियान एक आंदोलन बन जाता है। इस प्रकार, 'Make for the World' भारत के लिए केवल निर्यात बढ़ाने का माध्यम नहीं, बल्कि वैश्विक नेतृत्व की ओर बढ़ने का एक सशक्त मार्ग है। यदि भारत गुणवत्ता, नवाचार, प्रतिस्पर्धा और विश्वास के इन चार स्तंभों पर मजबूती से खड़ा हो जाता है, तो वह दिन दूर नहीं जब 'Made in India' पूरी दुनिया में उत्कृष्टता का प्रतीक बन जाएगा।

तकनीकी क्षेत्र में भारत की प्रगति

तकनीकी क्षेत्र में भारत की प्रगति इस यात्रा को और तेज़ बना रही है। आज हम केवल डिजिटल भारत की बात नहीं कर रहे, बल्कि AI भारत की ओर बढ़ रहे हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, क्वांटम कंप्यूटिंग और 5G जैसी तकनीकें केवल शब्द नहीं हैं, बल्कि ये आने वाले समय की नई दुनिया का आधार हैं। जब एक छात्र गांव में बैठकर ऑनलाइन पढ़ाई करता है, एक किसान मोबाइल से मौसम की जानकारी लेकर अपनी फसल का निर्णय करता है, तब तकनीक केवल सुविधा नहीं रहती, बल्कि यह सशक्तिकरण का माध्यम बन जाती है। यही वह बदलाव है, जो भारत को वैश्विक तकनीकी नेतृत्व की ओर ले जा रहा है।

भारत का विकास केवल शहरों तक सीमित नहीं रह सकता। यदि हमें वास्तव में विकसित राष्ट्र बनना है, तो ग्रामीण भारत को केंद्र में रखना होगा। भारत की आत्मा गांवों में बसती है, और जब तक गांव सशक्त नहीं होंगे, तब तक विकास अधूरा रहेगा। आधुनिक खेती, डिजिटल मंडियां और कृषि-आधारित उद्योग न केवल किसानों की आय बढ़ाएंगे, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर भी पैदा करेंगे। इससे शहरों की ओर पलायन कम होगा और एक संतुलित विकास संभव हो सकेगा। आज युवा शक्ति भारत की सबसे बड़ी ताकत है। लेकिन यह ताकत तभी उपयोगी है, जब यह शिक्षित और कुशल हो। नई शिक्षा नीति और कौशल विकास



कार्यक्रम इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। आज का युवा केवल नौकरी करने वाला नहीं, बल्कि नौकरी देने वाला बन सकता है। स्टार्टअप संस्कृति ने यह साबित कर दिया है कि अगर सही अवसर और समर्थन मिले, तो भारत का युवा दुनिया को दिशा दे सकता है। यही युवा 2047 के विकसित भारत का असली निर्माता होगा।

विकसित भारत@2047 के परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य क्षेत्र

विकसित भारत@2047 की परिकल्पना केवल आर्थिक प्रगति या तकनीकी उन्नति तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सबसे महत्वपूर्ण आधार है-एक स्वस्थ, सक्षम और उत्पादक जनसंख्या। क्योंकि अंततः किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके नागरिकों की सेहत, मानसिक स्थिरता और जीवन की गुणवत्ता में निहित होती है। यदि नागरिक स्वस्थ नहीं हैं, तो विकास के सभी दावे खोखले सिद्ध हो जाते हैं। इसलिए 2047 के विकसित भारत की यात्रा में स्वास्थ्य क्षेत्र केवल एक स्तंभ नहीं, बल्कि पूरे विकास ढांचे की नींव है।

कोविड-19 महामारी ने इस सच्चाई को पूरी दुनिया के सामने उजागर कर दिया। विकसित देशों की मजबूत अर्थव्यवस्थाएं भी उस समय कमजोर पड़ गईं, जब उनकी स्वास्थ्य प्रणालियां चरमरा गईं। वहीं भारत ने सीमित संसाधनों के बावजूद न केवल अपने नागरिकों की सुरक्षा की, बल्कि अनेक देशों को दवाइयों और वैक्सीन की आपूर्ति कर यह सिद्ध किया कि वह संकट के समय एक जिम्मेदार वैश्विक भागीदार बन सकता है। यह अनुभव भारत के लिए एक मोड़ (turning point) था, जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि अगर हमें 2047 तक विकसित राष्ट्र बनना है, तो स्वास्थ्य क्षेत्र में आत्मनिर्भरता और मजबूती को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी।

विकसित भारत@2047 के दृष्टिकोण से देखें तो



स्वास्थ्य क्षेत्र को तीन स्तरों पर मजबूत करना आवश्यक है-सुलभता, गुणवत्ता और सामर्थ्य। आज भी देश के कई हिस्सों में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी है, विशेषकर ग्रामीण और दूरदराज क्षेत्रों में। ऐसे में डिजिटल हेल्थ और टेलीमेडिसिन जैसे नवाचार भारत के लिए एक क्रांतिकारी समाधान बनकर उभरे हैं। एक साधारण स्मार्टफोन अब एक 'चलता-फिरता अस्पताल' बनता जा रहा है, जहाँ से व्यक्ति डॉक्टर से सलाह, रिपोर्ट और दवाइयों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। यह परिवर्तन न केवल समय और धन की बचत करता है, बल्कि स्वास्थ्य सेवाओं को लोकतांत्रिक बनाता है-जहाँ हर व्यक्ति को समान अवसर मिलता है।

लेकिन विकसित भारत की परिकल्पना केवल 'बीमारियों के इलाज' तक सीमित नहीं रह सकती। हमें स्वास्थ्य को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखना होगा, जिसमें रोकथाम को केंद्र में रखा जाए। आज भारत में मधुमेह, हृदय रोग और मानसिक तनाव जैसी जीवनशैली से जुड़ी बीमारियाँ तेजी से बढ़ रही हैं। यदि समय रहते इन पर ध्यान नहीं दिया गया, तो यह न केवल व्यक्ति, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ डाल सकती हैं। इसलिए योग, व्यायाम, संतुलित आहार और नियमित स्वास्थ्य जांच को जीवनशैली का हिस्सा बनाना अनिवार्य है। विकसित भारत का नागरिक वह होगा, जो बीमार होने के बाद नहीं, बल्कि बीमार होने से पहले ही जागरूक हो जाए।

स्वास्थ्य क्षेत्र में आत्मनिर्भरता भी 2047 के लक्ष्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है। कोविड के दौरान वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में आई बाधाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि दवाइयों, वैक्सीन और चिकित्सा उपकरणों के लिए दूसरों पर



निर्भर रहना कितना जोखिमपूर्ण हो सकता है। भारत ने 'फार्मेसी ऑफ द वर्ल्ड' के रूप में अपनी पहचान बनाई है, लेकिन अब समय है कि हम रिसर्च, नवाचार और उच्च तकनीक वाले चिकित्सा उपकरणों में भी अग्रणी बनें। जब भारत अपने लिए ही नहीं, बल्कि दुनिया के लिए भी समाधान तैयार करेगा, तभी वह वैश्विक स्वास्थ्य नेतृत्व की ओर बढ़ सकेगा। इसके साथ ही, विकसित भारत@2047 की यात्रा में मानसिक स्वास्थ्य को भी समान महत्व देना होगा। आज के डिजिटल और प्रतिस्पर्धात्मक युग में तनाव, अवसाद और अकेलेपन की समस्याएं तेजी से बढ़ रही हैं, विशेषकर युवाओं के बीच। यदि इन समस्याओं को नजरअंदाज किया गया, तो यह समाज की उत्पादकता और स्थिरता को प्रभावित कर सकती हैं। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाना, काउंसलिंग सेवाओं को सुलभ बनाना और समाज में सहानुभूति का वातावरण तैयार करना अत्यंत आवश्यक है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारत के पास स्वास्थ्य क्षेत्र में नेतृत्व करने का एक अनूठा अवसर है। एक ओर हमारे पास आधुनिक चिकित्सा विज्ञान है, तो दूसरी ओर योग, आयुर्वेद और ध्यान जैसी प्राचीन परंपराएं भी हैं, जो अब विश्वभर में स्वीकार्यता प्राप्त कर रही हैं। यदि इन दोनों का समन्वय किया जाए, तो भारत एक समग्र स्वास्थ्य मॉडल प्रस्तुत कर सकता है, जो न केवल शरीर, बल्कि मन और जीवनशैली को भी संतुलित करता है।

अंततः, विकसित भारत@2047 का सपना तभी साकार होगा, जब स्वास्थ्य क्षेत्र को केवल सरकारी जिम्मेदारी न मानकर, एक सामूहिक जन आंदोलन बनाया जाए। जब एक नागरिक स्वच्छता का ध्यान रखता है, समय पर टीकाकरण करवाता है, स्वस्थ जीवनशैली अपनाता है और दूसरों को भी जागरूक करता है-तब वह राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भागीदार बन जाता है।

इस प्रकार, स्वास्थ्य क्षेत्र विकसित भारत की यात्रा का केवल एक हिस्सा नहीं, बल्कि उसकी धड़कन और दिशा दोनों है। यदि यह धड़कन मजबूत और संतुलित होगी, तो भारत न केवल 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनेगा, बल्कि वैश्विक मंच पर एक ऐसे नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरेगा, जो पूरी मानवता के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए मार्गदर्शन करता है।

विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन

विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाए रखना आज केवल एक नीति का प्रश्न नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व की अनिवार्यता बन चुका है। 21वीं सदी का वैश्विक परिदृश्य हमें यह स्पष्ट संकेत दे रहा है कि यदि विकास की दौड़ में प्रकृति को पीछे छोड़ दिया गया, तो यह दौड़ अंततः विनाश की ओर ले जाएगी। जलवायु परिवर्तन, बढ़ता प्रदूषण, असामान्य मौसम, जल संकट-ये सभी चेतावनी हैं कि अब 'अंधाधुंध विकास' का मॉडल टिकाऊ नहीं है। ऐसे में विकसित भारत@2047 का सपना तभी सार्थक होगा, जब हम विकास को हरित, संतुलित और भविष्य-उन्मुख बनाएँ।

भारत ने इस दिशा में एक स्पष्ट और दूरदर्शी रुख अपनाया है। हरित ऊर्जा, इलेक्ट्रिक वाहन और ग्रीन हाइड्रोजन जैसे प्रयास केवल तकनीकी बदलाव नहीं, बल्कि विकास की सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन के प्रतीक हैं। आज जब दुनिया ऊर्जा संकट और जलवायु असंतुलन से जूझ रही है, तब भारत सौर और पवन ऊर्जा के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़कर यह संदेश दे रहा है कि विकास और पर्यावरण साथ-साथ चल सकते हैं। यह न केवल पर्यावरण की रक्षा करता है, बल्कि आम लोगों के लिए भी नए अवसर पैदा करता है-जैसे सोलर सेक्टर में रोजगार, इलेक्ट्रिक वाहनों के माध्यम से सस्ती परिवहन सुविधा, और ऊर्जा के खर्च में कमी।

आम नागरिक के दृष्टिकोण से यह परिवर्तन बेहद महत्वपूर्ण है। जब प्रदूषण कम होगा, तो स्वास्थ्य बेहतर होगा; जब ऊर्जा के सस्ते और स्वदेशी स्रोत उपलब्ध होंगे, तो घरेलू खर्च घटेगा; और जब हरित उद्योग विकसित होंगे, तो रोजगार के नए द्वार खुलेंगे। अर्थात, पर्यावरण संरक्षण केवल 'पेड़ बचाने' की बात नहीं, बल्कि जीवन स्तर सुधारने का सबसे सीधा और प्रभावी माध्यम है।

वैश्विक मंच पर भी भारत की भूमिका इसी सोच के कारण लगातार मजबूत हो रही है। आज भारत केवल



अंतरराष्ट्रीय निर्णयों का पालन करने वाला देश नहीं, बल्कि उन्हें दिशा देने वाला राष्ट्र बनकर उभर रहा है। जलवायु परिवर्तन पर संतुलित और न्यायपूर्ण दृष्टिकोण, विकासशील देशों की आवाज़ को वैश्विक मंच तक पहुँचाना, और 'साझा लेकिन अलग-अलग जिम्मेदारी' जैसे सिद्धांतों को मजबूती से रखना-ये सभी भारत को एक जिम्मेदार और दूरदर्शी नेतृत्वकर्ता के रूप में स्थापित कर रहे हैं। यह परिवर्तन भारत को 'अनुसरण करने वाले' से 'मार्गदर्शक' राष्ट्र में परिवर्तित कर रहा है।

हालांकि, इस परिवर्तन की राह आसान नहीं है। बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार और वैश्विक अस्थिरता जैसी चुनौतियाँ हमारे सामने खड़ी हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव, युद्ध जैसी परिस्थितियाँ और संसाधनों की प्रतिस्पर्धा-ये सभी विकास की गति को प्रभावित करते हैं। लेकिन यहीं पर भारत की सबसे बड़ी ताकत सामने आती है-जनसंख्या की ऊर्जा, लोकतांत्रिक व्यवस्था और नवाचार की क्षमता।

दरअसल, हर चुनौती अपने भीतर एक अवसर छिपाए होती है। बेरोजगारी को अगर सही दिशा दी जाए, तो यह स्किल डेवलपमेंट और स्टार्टअप संस्कृति को बढ़ावा दे सकती है; असमानता को कम करने के प्रयास सामाजिक स्थिरता और समावेशी विकास को मजबूत कर सकते हैं; और भ्रष्टाचार के खिलाफ पारदर्शिता व डिजिटल गवर्नेंस एक नई व्यवस्था स्थापित कर सकते हैं। आज डिजिटल इंडिया के माध्यम से जिस तरह पारदर्शिता बढ़ी है, वह इसका सशक्त उदाहरण है।

इस पूरे परिदृश्य में आम नागरिक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है। विकसित भारत केवल नीतियों से नहीं, बल्कि जनभागीदारी से बनेगा। जब एक व्यक्ति पर्यावरण के प्रति जागरूक होकर प्लास्टिक का उपयोग कम करता है, जब वह बिजली और पानी की बचत करता है, जब वह ईमानदारी से कर चुकाता है और अपने कौशल को विकसित करता हैकृतब वह केवल अपने जीवन को नहीं, बल्कि पूरे राष्ट्र के भविष्य को बदल रहा होता है।

यहां विकसित भारत@2047 कोई एक अंतिम लक्ष्य नहीं, बल्कि एक सतत और गतिशील यात्रा है। यह यात्रा आत्मनिर्भरता से शुरू होती है और वैश्विक नेतृत्व की ओर बढ़ते हुए एक नए युग की शुरुआत करती है। इस पूरी प्रक्रिया में बैंकिंग व्यवस्था वह आधार बनती है, जो हर नागरिक को इस यात्रा का सहभागी बनाती है। अब हमें यह तय करना है कि हम केवल दर्शक बनकर रहेंगे या बैंकिंग और वित्तीय सशक्तिकरण के माध्यम से इस परिवर्तन का सक्रिय हिस्सा बनेंगे।

यदि हर भारतीय बचत, निवेश और जिम्मेदार वित्तीय व्यवहार को अपनाए, यदि हर युवा अपने सपनों को साकार करने के लिए उपलब्ध वित्तीय संसाधनों का सही उपयोग करे, और यदि बैंकिंग प्रणाली हर वर्ग तक समान रूप से पहुंच बनाए-तो 2047 का विकसित भारत केवल एक सपना नहीं, बल्कि एक सजीव, सशक्त और समावेशी वास्तविकता बन जाएगा।

वरिष्ठ विज्ञान लेखक। भौतिक विज्ञान से एम.एससी. एवं ऊर्जा पर शोधकार्य। 1000 से अधिक लेख प्रकाशित। विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा डॉ. गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार के साथ कई अन्य पुरस्कारों से अलंकृत।

vijonkumarpandey@gmail.com

नई उम्र देता विज्ञान



प्रमोद भार्गव

क्या हो यदि दर्पण टूटने पर स्वयं जुड़ जाए ? वस्त्र फटने पर स्वयं सिल जाए और बुढ़ापे में जवानी लौट आए ? विज्ञान की दुनिया में अब कुछ ऐसा ही चमत्कार होने जा रहा है। मानव शताब्दियों से ऐसी अमृत- औधधि की खोज करता रहा है, जिससे उपचार से जीवन की आयु बढ़ जाए या फिर वह मरे ही नहीं। हालांकि चिकित्सा विज्ञान की शुरूआत से लेकर आज तक ऐसा संभव हो नहीं पाया है। किंतु विज्ञानियों की यह तलाश अब सूक्ष्मदर्शी यंत्र के जरिए मानव कोशिकाओं की उस तह तक पहुंच गई है, जहां मरती कोशिकाओं को उपचारित कर उन्हें पुनर्जीवित किया जा सकता है। इस लक्ष्य को साधने में अल्टोस प्रयोग्रशाला में नवीनतम अनुसंधान चल रहे हैं। यह प्रयोगशाला एक बायोटेक कंपनी है, जो मुख्य रूप से सैन फ्रांसिस्को बे एरिया (रेडवुड सिटी) कैलिफोर्निया और कैम्ब्रिज यूके में स्थित हैं। यह कंपनी कोशिका के कायाकल्प (सेलुलर रिज्युवेंशन) के माध्यम से बीमारियों का आश्चर्यजनक उपचार करने का काम करती है। यानी इस प्रक्रिया के माध्यम से मनुष्य की न केवल उम्र को बढ़ाने के उपाय होंगे, बल्कि युवावस्था के लौटने के भी उपाय होंगे। अतएव इस तकनीक को बुढ़ापे का उपचार कहा जा रहा है।

जीव चिकित्सा विज्ञान अब केवल रोगों के उपचार तक ही सीमित नहीं रह गया है, अपितु ये शरीर की जैविक उम्र को थामने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। हम ऐसी प्रौद्योगिकी के युग में हैं, जहां कोशिकाओं का कायाकल्प और आनुवंशिक बदलाव (जेनेटिक रिपेयर) एक वैज्ञानिक सच्चाई बनती जा रही है। असल में उम्र बढ़ना केवल आनुवंशिकता पर निर्भर नहीं है, बल्कि आनुवंशिक परिवर्तनों का परिणाम है। आनुवंशिकता के मायने, जीन की संरचना में होने वाले वे बदलाव हैं, जो डीएनए के मूल अनुक्रम को बदले बिना होते हैं। ये बदलाव हमारे खान-पान, जीवनशैली और पर्यावरणीय प्रभावों के कारण होते हैं, जो जीन की क्रियाशीलता को गतिशील बनाए रखने या फिर कुंद कर देने में सक्षम होते हैं। यह आनुवंशिकता का वह अनुभाग है, जो व्यवहार से परिवर्तित हो जाता है। जैविक तकनीक में इसे एपिजेनेटिक परिवर्तन माना जाता है। दरअसल व्यक्ति के शरीर की कोशिकाओं की आंतरिक संरचना में एक जैविक (बायोलॉजिकल) सॉफ्टवेयर होता है। परिवर्तित समय-चक्र के साथ-साथ यह सॉफ्टवेयर मानसिक तनाव, दूषित वायु और आयु बढ़ने के चलते इसमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इन्हें कंप्यूटर तकनीक की भाषा बग्स (कीड़े) कहा जाता है। इनके प्रभाव से कोशिकाएं अपनी दिनचर्या भूलने लगती हैं। इसे कंप्यूटर, प्रोग्रामिंग सॉफ्टवेयर या सिस्टम में प्रवेश कर गई त्रृटि या बाधा माना जाता है, जिसके कारण कंप्यूटर प्रणाली सुचारू



रूप से या उम्मीद के अनुरूप नहीं चलती है। गलत परिणाम भी देने लगती है। वस्तुतः सॉफ्टवेयर क्रैश हो सकता है, गति मंदी पड़ सकती है या फिर अनुचित अथवा अप्रत्याशित आचरण करने लग जाता है। ये सब दोष आमतौर से कोडिंग की गलतियों के कारण उत्पन्न होते हैं। इन गड़बड़ियों को जिस तरह सॉफ्टवेयर इंजीनियर ठीक कर देते हैं, उसी प्रकार कोशिकाओं के क्षरण जीन विशेषज्ञ ठीक कर सकते हैं। अल्टोस प्रयोगशाला इसी जैविक सॉफ्टवेयर रीसेट करने के व्यावहारिक उपाय खोजने में लगी है।

मानव शरीर में बुढ़ापा आने के कारणों में 'यामानाका कारकों' को दोषी माना गया है। परिपक्व वयस्क कोशिकाओं में आए इन दोषों को स्तंभ (स्टोम) कोशिकाओं के माध्यम से पुनः सक्रिय या रीसेट किया जा सकता है। डॉ शिन्या यामानाका द्वारा 2006 में खोजी गई यह तकनीक बुढ़ापे को पलटने, कैंसर को ठीक करने के लिए पुनर्योजी चिकित्सा (रिजेनरेटिव मेडिसिन) में क्रांतिकारी भूमिका का निर्वाह कर रही है। इस तकनीक के जरिए स्तंभ कोशिकाओं के चमत्कारी प्रोटीन को पहुंचाकर बूढ़ी या क्षरित हो चुकी कोशिकाओं को पुनर्जीवित करके युवावस्था में बदल दिया जाता है। यानी कोशिका की आंशिक रीप्रोग्रामिंग करके बुढ़ापे को जवानी में बदलने के उपाय हो जाएंगे। इस उपाय के जरिए मूल कोशिका में ही नई ऊर्जा प्रत्यारोपित कर उसकी मरम्मत कर दी जाएगी और बूढ़ा व्यक्ति जवान हो जाएगा।

डॉ यामानाका ने पहले चूहों में इस प्रयोग को सफलतापूर्वक संपन्न किया, तत्पश्चात मानव कोशिकाओं में इसे सिद्ध किया। यह उपाय कोशिकाओं में जैविक घड़ी को रीसेट कर देते हैं। परिणामस्वरूप त्वचा और मांसपेशियों की वयस्क कोशिकाएं भ्रूण जैसी स्तंभ कोशिकाओं में परिवर्तित हो जाती हैं। इस चिकित्सा पद्धति को ऊतक पुनर्जनन (टिसूज रिजेनरेशन) कैंसर और तंत्रिका संबंधी बीमारियों के उपचार में सहायक माना जा रहा है। परंतु इस तकनीक का अत्याधिक उपयोग कैंसर का कारण भी बन सकता है। अतएव जीन-विज्ञानी इसके सुरक्षित और आंशिक उपयोग पर अनुसंधान कर रहे हैं। अल्टोस प्रयोगशाला में किए जा रहे इस अनुसंधान को परिणाम में बदलने में पूंजी और नोबेल स्तर के ज्ञान को महत्व दिया जा रहा है। अमेजन के संस्थापक जेफ बेजोस और यूरी मिलनर जैसे अरबपतियों ने इसमें लगभग 25 हजार करोड़ रुपए का निवेश किया है। यह इतिहास का सबसे बड़ा स्टार्टअप में किया निवेश माना जाता है। अल्टोस प्रयोगशाला के संचालन व प्रबंधन का काम नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक डॉ शिन्या यामानाका और जैविक घड़ी के विशेषज्ञ स्टीव होर्वाथ जैसे दिग्गज के हाथ में है।

अल्टोस प्रयोगशाला का आरंभ 2022 में हुआ था। प्रयोगशाला में किए जा रहे प्रयोगों का मुख्य लक्ष्य बुढ़ापे के लक्षणों को स्तंभ कोशिकाओं के माध्यम से समापन करना है। कृत्रिम बुद्धिमता के माध्यम से कोशिकाओं के व्यवहार को पढ़ा जा रहा है। इससे यह समझना आसान हो गया है कि कोशिकाएं कब थककर क्षरण का शिकार होने लगती हैं। थकान की इसी स्थिति को बुढ़ापे का बुनियादी कारण माना जा रहा है। यदि प्रयोगशाला में किए जा रहे अनुसंधान जैविक विज्ञानियों की उम्मीदों पर खरे उतरते हैं तो चिकित्सक इस विधि से हृदय व कैंसर जैसे प्राणलेवा रोगों का उपचार करने की बजाय सीधे बुढ़ापे का इलाज करेंगे। रोगग्रस्त हो चुके गुर्दा, यकृत या फेंफड़े जैसे अंगों को बदलने की वनिस्वत शरीर उन्हें भीतर ही भीतर स्वयं स्वस्थ बना लेगा। इस पद्धति के परिणाम मानव भविष्य को ऐसे युग में पहुंचा देने के संभावित उपाय हैं, जहां 80 साल की उम्र में भी शरीर की कोशिकाएं ऐसी नवीन ऊर्जा से भर जाएंगी की आयु घट कर 30 वर्ष की अनुभव होने लग जाएगी। यानी व्यक्ति न केवल दीर्घायु हो जाएंगे, अपितु स्वस्थ भी रहेंगे।





भारत में भी कृत्रिम विधि से की गईं जीवित कोशिकाएं विकसित हैं

कोलकाता के युवा विज्ञानी डॉ दिब्येंदु दास ने अपने विलक्षण ज्ञान से न केवल कृत्रिम विधि से जीवित कोशिकाएं विकसित की हैं, अपितु उन्हें मनुष्यों की तरह बौद्धिक भी बनाने का अद्वितीय काम किया है। अपने अनूठे अनुसंधान से दिब्येंदु ने जता दिया कि भारतीय प्रयोगशालाओं में भी विश्वस्तरीय शोध संभव हैं। अतएव भविष्य में भारत केवल वैश्विक तकनीक का उपभोक्ता भर नहीं रह जाएगा, बल्कि कालांतर में विज्ञान व मौलिक विज्ञान तथा डीप टेक के क्षेत्र में नेतृत्व करने को भी तैयार हो रहा है। डीप प्रौद्योगिकी से तात्पर्य उन उन्नत वैज्ञानिक खोजों और इंजीनियरिंग नवाचारों से है, जो समाज की जटिल समस्याओं को सुलझाने और उद्योगों में क्रांतिकारी बदलाव लाने की क्षमता रखती हैं।

इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एजुकेशन एंड रिसर्च (आइआइएसआर) कोलकाता में 44 वर्षीय प्राध्यापक डॉ दिब्येंदु दास को उनके इस विलक्षण शोध के लिए राष्ट्रपति द्रोपदी मुर्म ने विज्ञान के क्षेत्र में युवा शांतिस्वरूप भटनागर पुरस्कार से सम्मानित किया है। दिब्येंदु कहते हैं, 'एक जीवित कोशिका को तीन चीजों की जरूरत होती है-सुरक्षा के लिए आवरण, ऊर्जा के लिए भोजन व अस्तित्व बनाए रखने के लिए प्रजनन। इसी प्रकार उनकी मृत्यु भी जरूरी है। इस सिद्धांत का पालन करते हुए हमने कोशिका को विकसित करना शुरू किया था।

इस परिकल्ना को अंजाम तक पहुंचाने के लिए छोटे अणु (मोलीक्यूल) से एक संरचना तैयार की गई। यह संरचना तभी तैयार हो सकती है, जब इसे पर्याप्त आहार (ऊर्जा) मिले। इन कोशिकाओं को इस तरह बनाया है कि इसमें एक ही छोटा अणु रह पाए, जो बाद में टूटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखर जाए। तदुपरांत इससे जो ऊर्जा उत्सर्जित होगी, उसी से जीवित कोशिकाएं विकसित होंगी। दस साल के गंभीर अध्ययन और अनुसंधान के आधार पर प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से ऐसी कोशिकाएं विकसित करने में सफलता भी मिल गई। इन सभी कोशिकाओं में एडेनोसिन ट्राइफास्फेट (एटीपी) ऊर्जा वाहक अणु हैं। इसे कोशिका की 'ऊर्जा-मुद्रा' भी कहा जाता है। यह आहार से चयापचय से प्राप्त रासायनिक ऊर्जा को संचित करता है और मांसपेशियों के संकुचन, तंत्रिका आवेगों और आणविक संशलेषण जैसी जैविक प्रक्रियाओं के लिए तुरंत ऊर्जा प्रदान करता है। ये कोशिकाएं गतिशील रह सकती हैं। अपना आकार बदल सकती हैं और विशेष रासायनिक कार्य कर सकती है। डॉ दिब्येंदु का मत है कि 'मेरा लक्ष्य ऐसी प्रणालियां विकसित करना है, जो बुद्धिमानी से कार्य करें। इनके माध्यम से ऐसी नैनो मशीनें बना ली जाएं, जो इंसानी बाल से हजारों गुना छोटी हों और शरीर के भीतर जाकर सीधे लक्ष्य को साध लें। अर्थात गंभीर बीमारी को अंदर पहुंचकर स्वस्थ बनाने का काम करें। कोशिकाओं के इस पुनर्जीवन से बुढ़ापा लाने वाली क्षरित हो रही कोशिकाओं का भी उपचार किया जा सकेगा। यानी निकट भविष्य में वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी बुढ़ापे को दुरुस्त कर चमत्कारिक ढंग से जवानी में बदल देगी।

वरिष्ठ लेखक-पत्रकार एवं विज्ञान संचारक। विज्ञान आधारित उपन्यास, कहानी संग्रह तथा कई पुस्तकें प्रकाशित। उपन्यास 'दशावतार' वैज्ञानिक संदर्भों के कारण चर्चित। वन्य-जीवन पर दस लघु-पुस्तिकाएं भी प्रकाशित। प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित।

pramod.bhargava15@gmail.com

क्या नष्ट हो जायेगा ग्रेट निकोबार





अस्मि सक्सेना

ग्रेट निकोबार में अलार्म लगातार घनघना रहा है। खतरे की घंटी लगातार बज रही है। मगर उसकी आवाज को लगातार अनसुना किया जा रहा है। घड़ी की सुइयां तेजी से घूम रही हैं और फैसले-दर-फैसले भयावह आपदा का सामान जुटा रहे हैं। पर्यावरणविद् सचेत हैं और वे भी जो प्रकृति और आदिवासियों से प्रेम और उनकी परवाह करते हैं। विभिन्न मंचों से उन्होंने अपनी चिंताओं का इजहार भी किया है। उद्विगन जनों ने नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल में भी दस्तक दी है, मगर बात बनती नहीं दीखती और अनिष्ट की आशंका बढ़ती जा रही है।

नृतत्त्व शास्त्रीय, पारिस्थितिकी और पर्यावरणीय संदर्भों को छोड़ भी दें तो भौगोलिक दृष्टि से भी हम ग्रेट निकोबार के बारे में कम जानते हैं। ग्रेट निकोबार अंडमान और निकोबार समूह का सबसे दक्षिणी और सुदूरवर्ती द्वीप है। पारिस्थितिकी के मान से अत्यंत समृद्ध यह द्वीप यूनेस्को बायोस्फीयर रिजर्व है। यहां प्राचीनतम, दुर्लभ और अछूते वर्षावन की समृद्ध विरासत विद्यमान है। द्वीप का भू-राजनीतिक और सामरिक महत्व भी निर्विवाद है। यहां विलुप्तप्राय शोम्पेन जनजाति निवास करती है। त्सुनामी के बाद जिसके कुल लगभग ढाई सौ सदस्य बचे हैं। द्वीप के दक्षिण-पूर्वी तट पर स्थित है भारत के सबसे दक्षिणी छोर का इंदिरा पाइंट और निकट ही है गलाथिया खाड़ी, जो बंगाल की खाड़ी में प्रवेश कर मुलायम चांदी जैसी रेत का विहंगम दृश्य रचती है। यहीं समुद्र के सबसे विशाल लेदरबैक कछुओं के करीब पांच सौ प्रजनन स्थल हैं। लेदरबैक कच्छप इन आवासों में ऋतु में आते है और प्रजनन के उपरांत कुछ आस्ट्रेलिया, तो कुछ अफ्रीकी तटों की ओर निकल जाते हैं। यहां प्रवाल भी हैं और मैंग्रोव भी। यह प्रवासी पक्षियों का प्रिय स्थल है। जनजातीय और नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन के लिये यह महत्त्वपूर्ण और कीमती पाठशाला है। जैव-विविधता की तो बात ही क्या!

मगर यह विलक्षण लोक अब खतरे में है। ग्रेट निकोबार द्वीप संकटापन्न है। विवेकहीनता और अदूरदर्शिता की कोख से उपजी योजनाएं उसे निगल सकती हैं। वजह यह कि पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने नवंबर, सन 2022 में एक विराट इंफ्रास्ट्रक्चर परियोजना को पर्यावरणीय मंजूरी प्रदान की है। इसके लिए उसने द्वीप के समग्र विकास की लुभावनी



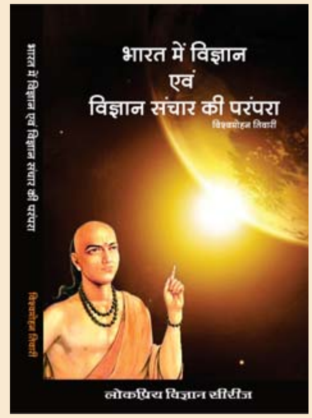
शब्दावली इस्तेमाल की है। इस अधोसंरचना प्रोजेक्ट पर 72000 करोड़ रूपयों की लागत आयेगी। इससे करीब तीन दशकों में ग्रेट निकोबार का हुलिया बदल जाएगा। गौरतलब है कि यह भूकंप के लिहाज से उच्च संवेदी और अति जोखिम का क्षेत्र भी है।

सरकार की महत्वाकांक्षी परियोजना की बात करें तो समग्र विकास के कथित संजाल में 40,000 करोड़ रूपयों की लागत से ट्रांसशिपमेंट पत्तन (पोर्ट) बनेगा, जिसमें एक अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा, एक विद्युत संयंत्र और एक ग्रीन फील्ड टाउनशिप शामिल होगी। यह टाउनशिप सघन वन क्षेत्र में 130 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में जंगल को उजाड़कर बसाई जायेगी। मोटे तौर पर बस्ती बसाने के लिए दस लाख पेड़ काटे जाएंगे। यही नहीं इस अत्यंत विरल आबादी के क्षेत्र में, जहां की मौजूदा आबादी करीब आठ हजार है, तीन दहाइयों में जनसंख्या बढ़कर साढ़े तीन लाख हो जायेगी। यह जनसांख्यकीय परिवर्तन मुख्यतः विजातीय बहिरागतों के आगमन से होगा। सिर्फ कल्पना की जा सकती है कि आबादी में 4000 फीसद की वृद्धि, लोहे और कांक्रीट की इमारतें और बड़े पैमाने पर निर्वनीकरण शांत-सुरम्य निरापद द्वीप पर क्या गुल खिलायेंगे?

ग्रेट निकोबार दिसंबर, 2004 में भूकंप और त्सुनामी के अकल्पनीय प्रकोप का सामना कर चुका है। छोटे-मोटे भूकंप उसकी नियति है। बंदरगाह के निर्माण को सुकर बनाने के वास्ते राष्ट्रीय वन्यजीव बोर्ड ने अभयारण्य गैर अधिसूचित कर दिया है। खतरे की सघनता को इससे आंकें कि बीती दहाई में द्वीपों ने 444 भूकंपों का सामना किया है। आईसीटीटी, हवाई अड्डा, टाउनशिप, बिजली संयंत्र के लिए 16610 हेक्टर और बंदरगाह व हवाई अड्डे के पुनर्ग्रहण के लिए 421 हेक्टर भूमि की जरूरत होगी। सन 2004 के भूकंप में ग्रेट निकोबार की तटरेखा करीब 4.5 मीटर धँस गयी थी और इंदिरा पाइंट का लाइटहाउस आज भी पानी में है। बीते दशक में यहां भूकंपों की आवृत्ति बढ़ी है, लेकिन इसे इग्नोर किया जा रहा है। पहले यहां साल में 10-11 माह बारिश होती थी, अब वह घटकर पांच से आठ माह रह गयी है। बिलाशक हम जीवन की प्राकृतिक प्रयोगशालाओं को क्षति पहुंचाते जा रहे हैं।

युवा लेखिका एवं अनुवादक। पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान लेख प्रकाशित होते रहे हैं। विज्ञान लेख और गल्प के व्यापक रूप से अनुवाद किए हैं। विज्ञान के नूतन विषयों और वर्गीकृत विषयों पर लेखन में गहरी दिलचस्पी।

asmisaxena92@gmail.com



भारत में विज्ञान एवं विज्ञान संचार की परंपरा

लेखक : विश्वमोहन तिवारी
प्रकाशक : आईसेक्ट प्रकाशन
मूल्य : 500/-

विश्वमोहन तिवारी का जन्म 26 फरवरी 1935 को जबलपुर में हुआ। उन्होंने एमटेक, क्रेनफिल्ड इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी, इग्लैंड तथा विशारद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से शिक्षा प्राप्त की तथा एयर वाइसमार्शल हुए। उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ विज्ञान का आनंद, बोधिवृक्ष के नीचे, आनंद पक्षी निहारन का, सरल वैदिक गणित, खाड़ी युद्ध 91, यात्राओं का आनंद, नई दिशा, सुनो मनु, हमारे कलाम, उपग्रह के बाहर भीतर, इलेक्ट्रॉनिकी युद्ध कला आदि हैं। उन्हें आत्माराम पुरस्कार, मेघनाथ साहा पुरस्कार, सहस्राब्दि हिन्दी सेवी सम्मान, इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार, रक्षा मंत्रालय पुरस्कार, राहुल सांस्कृत्यान पुरस्कार, राष्ट्र गौरव सम्मान, विवेकानंद पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, आर्य भट्ट सम्मान, तकनीकी मौलिक लेखन पुरस्कार, विज्ञान भूषण सम्मान, हिन्दी संवाहक सम्मान आदि पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत किताब में उन्होंने भारत में विज्ञान की परंपरा और वर्तमान स्थिति पर गंभीरता से विचार किया है। भारत में विज्ञान की परंपरा का प्रारम्भ वैदिक युग से ही हो जाता है। सनातन धर्म मूलतः विज्ञान का विरोध नहीं करता, क्योंकि उसकी सोच विज्ञान संगत है। इस पुस्तक में विज्ञान तथा विज्ञान संचार के विभिन्न आयामों को विभिन्न दृष्टियों से प्रस्तुत किया गया है।

तकनीक

तकनीक, वैश्विक पूँजी और मानवीय त्रासदी का अंतर्संबंध



शैलेन्द्र चौहान

आज का मनुष्य अपने समय को यदि किसी एक वस्तु में समेटकर देखना चाहे, तो वह निस्संदेह सेलफोन होगा। यह केवल एक उपकरण नहीं, बल्कि हमारे समय की जीवन-शैली, अर्थव्यवस्था और चेतना का प्रतीक बन चुका है। संवाद, ज्ञान, मनोरंजन, सामाजिक संबंध-सब कुछ इसकी स्क्रीन पर घटित होता है। लेकिन जितनी सहजता से हम इसका उपयोग करते हैं, उतनी ही सहजता से हम उसके निर्माण की प्रक्रिया और उसके पीछे की जटिल वास्तविकताओं को नजरअंदाज कर देते हैं। आधुनिक तकनीक की यह चमक दरअसल एक ऐसे अंधेरे को ढँक देती है, जो दुनिया के कुछ हिस्सों में मानव जीवन के लिए भयावह साबित हो रहा है।

मोबाइल फोन के निर्माण में कई प्रकार के धातु और खनिजों का उपयोग होता है, जिनमें 'कोल्टन' विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कोल्टन से टैंटलम नामक धातु प्राप्त होती है, जो इलेक्ट्रॉनिक कंडेंसरों में प्रयुक्त होती है। ये कंडेंसर उपकरणों में ऊर्जा को नियंत्रित और स्थिर रखने का काम करते हैं, जिससे स्मार्टफोन, लैपटॉप और अन्य डिजिटल उपकरण सुचारु रूप से कार्य कर पाते हैं। इस प्रकार, हमारे हाथ में मौजूद यह छोटा-सा यंत्र एक वैश्विक खनन और औद्योगिक नेटवर्क का परिणाम है।

कोल्टन का सबसे बड़ा भंडार मध्य अफ्रीका के कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य में पाया जाता है। यह देश प्राकृतिक संसाधनों से अत्यंत समृद्ध है-यहाँ सोना, हीरा, तांबा और अन्य खनिज भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। विडंबना यह है कि इतनी संपन्नता के बावजूद कांगो दुनिया के सबसे गरीब और अस्थिर देशों में गिना जाता है। इसका कारण केवल आर्थिक नहीं, बल्कि राजनीतिक और ऐतिहासिक भी है। औपनिवेशिक शोषण, तानाशाही शासन और बाहरी हस्तक्षेपों ने इस देश को लगातार



अस्थिर बनाए रखा है। 1990 के दशक के उत्तरार्ध में कांगो में जो भीषण संघर्ष शुरू हुआ, उसने पूरे क्षेत्र को हिंसा की आग में झोंक दिया। इस संघर्ष में कई अफ्रीकी देशों की सेनाएँ और अनेक सशस्त्र गुट शामिल हो गए। इसे कई बार 'अफ्रीका का विश्व युद्ध' कहा गया है, क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से कई देशों की भागीदारी रही। इस युद्ध और उसके बाद की हिंसा में लाखों लोगों की मृत्यु हुई-अनुमानतः 50 लाख से अधिक। इस पूरे संघर्ष का एक प्रमुख कारण प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर कोल्टन, पर नियंत्रण की होड़ थी। खनिज संपदा यहाँ आशीर्वाद नहीं, बल्कि अभिशाप बन गई।

कोल्टन के खनन की प्रक्रिया अत्यंत कठिन और खतरनाक है। अधिकांश खनन छोटे पैमाने पर, असंगठित और असुरक्षित परिस्थितियों में होता है। इन खदानों में काम करने वाले मजदूरों को न तो पर्याप्त सुरक्षा मिलती है और न ही उचित पारिश्रमिक। सबसे चिंताजनक तथ्य यह है कि इस श्रम में बड़ी संख्या में बच्चे भी शामिल होते हैं। 7 से 10 वर्ष तक के बच्चे संकरी सुरंगों में उतरते हैं, क्योंकि उनका शरीर छोटा होता है और वे उन स्थानों तक पहुँच सकते हैं जहाँ वयस्क नहीं जा सकते। यह स्थिति न केवल आर्थिक शोषण को दर्शाती है, बल्कि मानवाधिकारों के गंभीर उल्लंघन की ओर भी संकेत करती है।

इन बच्चों का जीवन अत्यंत जोखिम भरा होता है। खदानों के भीतर जहरीली धूल, ऑक्सीजन की कमी और चट्टानों के धंसने का खतरा हर समय बना रहता है। अनेक बच्चे दुर्घटनाओं में अपनी जान गंवा देते हैं, जबकि कई अन्य स्थायी रूप से बीमार हो जाते हैं। उनकी मजदूरी भी बेहद कम होती है-कभी-कभी दिन भर के काम के बदले कुछ सेंट्स मात्र। यह आधुनिक दासता का एक रूप है, जिसे वैश्विक अर्थव्यवस्था की जरूरतें बनाए रखती हैं।

इस परिदृश्य में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भूमिका जटिल और विवादास्पद है। सोनी, मौटोरोला, नोकिया जैसी कंपनियाँ उन उत्पादों का निर्माण करती हैं, जिनके लिए टैंटलम आवश्यक है। यह कहना उचित नहीं होगा कि ये कंपनियाँ सीधे तौर पर शोषण में शामिल हैं, लेकिन यह भी सच है कि उनकी आपूर्ति श्रृंखलाएँ अक्सर उन स्रोतों से जुड़ी होती हैं जहाँ खनन अमानवीय परिस्थितियों में होता है। 'कंफ्लिक्ट मिनरल्स' की अवधारणा इसी समस्या को रेखांकित करती है-ऐसे खनिज, जिनकी बिक्री से प्राप्त धन संघर्ष और हिंसा को बढ़ावा देता है।

पिछले कुछ वर्षों में इस दिशा में सुधार के प्रयास हुए हैं। अंतरराष्ट्रीय संगठनों और कुछ देशों ने कंपनियों पर दबाव डाला है कि वे अपनी आपूर्ति श्रृंखला को पारदर्शी बनाएँ और यह सुनिश्चित करें कि उनके उत्पादों में प्रयुक्त खनिज संघर्ष-प्रभावित क्षेत्रों से न आएँ। उदाहरण के लिए, कंपनियों को यह बताना होता है कि उनके द्वारा उपयोग किए गए खनिज कहाँ से आए हैं और क्या वे 'संघर्ष-मुक्त' हैं। हालांकि, इन उपायों की अपनी सीमाएँ हैं। आपूर्ति श्रृंखला इतनी जटिल और बहुस्तरीय होती है कि पूरी तरह पारदर्शिता हासिल करना कठिन होता है।

यहाँ एक और महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है-सूचना का। क्या आम उपभोक्ता को इस पूरी प्रक्रिया की जानकारी है? आंशिक रूप से हाँ, लेकिन व्यापक स्तर पर नहीं। मीडिया और शोध संस्थानों ने समय-समय पर इस विषय पर रिपोर्टिंग की है, लेकिन यह जानकारी आम जीवन की प्राथमिकताओं में शामिल नहीं हो पाती। उपभोक्ता के रूप में हम उत्पाद के अंतिम रूप से परिचित होते हैं, न कि उसके निर्माण की प्रक्रिया से। यह दूरी ही उस व्यवस्था को बनाए रखने में मदद करती है, जिसमें शोषण अदृश्य बना रहता है।

इस पूरे परिदृश्य को समझने में साहित्य की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। निकारागुआ के कवि अर्नेस्तो कार्दनाल की कविता "सेलफोन" इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, जिसका हिंदी अनुवाद मंगलेश डबराल ने किया। यह कविता उपभोक्ता और उत्पादन के बीच की दूरी को समाप्त करती है और उस नैतिक प्रश्न को सामने लाती है, जिससे हम अक्सर बचते रहते हैं। कविता यह दिखाती है कि हमारे हाथ में पकड़ा हुआ



उपकरण केवल तकनीक का चमत्कार नहीं, बल्कि कई अनदेखे जीवनों की पीड़ा का परिणाम भी है।
कविता का महत्व इसलिए भी है कि वह तथ्यों को संवेदना में बदल देती है। जहाँ आँकड़े हमें चौंकाते हैं, वहीं कविता हमें विचलित करती है। वह हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि क्या हमारी सुविधाएँ किसी और के कष्ट पर आधारित हैं। यह प्रश्न असहज है, लेकिन आवश्यक भी।

अंततः, इस पूरे विमर्श का निष्कर्ष किसी सरल समाधान की ओर नहीं जाता। आधुनिक तकनीक को त्यागना न तो संभव है और न ही व्यावहारिक। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हम पूरी तरह उदासीन बने रहें। उपभोक्ता के रूप में हमारी जागरूकता, नागरिक के रूप में हमारी माँगें और नीतिगत स्तर पर किए गए प्रयास-ये सब मिलकर ही इस स्थिति में सुधार ला सकते हैं। कंपनियों पर नैतिक दबाव, पारदर्शिता की माँग और अंतरराष्ट्रीय सहयोग-ये कुछ ऐसे उपाय हैं, जिनसे स्थिति को बेहतर बनाया जा सकता है।

सेलफोन की चमक हमें आकर्षित करती है, लेकिन उसके भीतर छिपा कोल्टन हमें एक गहरे अंधेरे की याद दिलाता है। यह अंधेरा केवल कांगो की खदानों में नहीं, बल्कि हमारी उस सोच में भी है, जो सुविधा के सामने सच को अनदेखा कर देती है। यदि तकनीक को सचमुच मानव प्रगति का प्रतीक बनाना है, तो उसे न्याय, समानता और मानव गरिमा के साथ जोड़ना होगा। तभी यह संभव होगा कि हमारे हाथ में पकड़ा हुआ यह छोटा-सा उपकरण केवल संचार का माध्यम न होकर एक अधिक न्यायपूर्ण दुनिया की दिशा में भी योगदान दे।

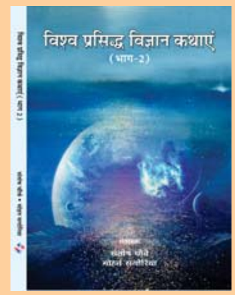
विज्ञान कर्मी-वरिष्ठ संपादक

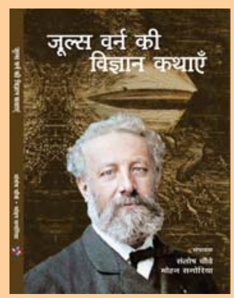
संतोष चौबे

द्वारा संपादित विश्व प्रसिद्ध विज्ञान कथा संचयन का

कोम्बो सेट







प्रत्येक खण्ड का मूल्य 300/-

25% छूट पर उपलब्ध

प्रकाशक

आईसेक्ट पब्लिकेशन

स्कोप कैम्पस एनएच 12, नियर मिसरोद,

होशंगाबाद रोड, भोपाल -462047

दूरभाष : 0755-2432801

ई-मेल : estore@aisect.org

वेबसाइट : www.aisectpublications.org

वरिष्ठ विज्ञान लेखक एवं संपादक। बीई इलेक्ट्रिकल के बाद वैज्ञानिक, सामाजिक, शैक्षिक क्षेत्र में पत्रकारिता। 'नौ रुपये बीस पैसे के लिए', 'श्वेतपत्र', 'और कितने प्रकाश वर्ष', 'ईश्वर की चौखट पर', 'नहीं यह कोई कहानी नहीं', 'पांव जमीन पर' तथा 'कविता का जनपक्ष' प्रकाशित। संपादक 'धरती'।

shailendrachauhan@hotmail.com

डिजिटल नशे में गिरफ़्त बचपन



श्वेता गोयल

21 वीं सदी की चमक-दमक के बीच एक ऐसी खामोश महामारी अब हमारे घरों में पैठ बना चुकी है, जिसके लक्षण न तो थर्मामीटर पर दिखाई देते हैं और न ही किसी लैब रिपोर्ट में। यह महामारी है 'डिजिटल लत'। स्मार्टफोन, हाई-स्पीड इंटरनेट और ऑनलाइन गेमिंग ने सुविधा, मनोरंजन और कनेक्टिविटी के नए द्वार खोले लेकिन इसी के साथ हमारे बच्चों के भीतर एक अदृश्य कैद भी रच दी। कुछ ही दिनों पहले गाजियाबाद में तीन नाबालिग सगी बहनों द्वारा नौवीं मंजिल से कूदकर सामूहिक आत्मघात करने की घटना अभी तक जेहन में ताजा है, जिसने न केवल समाज की अंतरात्मा को झकझोर दिया था बल्कि उस भयावह सत्य को भी उजागर किया, जिसे हम अक्सर 'टेक्नॉलॉजी के साथ तालमेल' कहकर टाल देते हैं। ऐसी हृदयविदारक घटनाएं अब समाज के लिए एक सभ्यतागत चेतावनी बन चुकी हैं। आज प्रश्न यह नहीं है कि तकनीक बुरी है या अच्छी बल्कि प्रश्न यह है कि क्या हमने अपने बच्चों को तकनीक के उपयोग की समझ दी या फिर उन्हें तकनीक के हवाले छोड़ दिया?

गाजियाबाद की घटना किसी क्षणिक आवेग का परिणाम नहीं थी बल्कि लंबे समय से पनप रही एक गहरी मानसिक और डिजिटल त्रासदी का विस्फोट था। जब अभिभावकों ने बच्चों के हाथ से मोबाइल छीना तो वह उनके लिए मात्र एक उपकरण का छिनना नहीं था बल्कि उस आभासी संसार का ध्वंस था, जिसमें वे भावनात्मक और मानसिक रूप से बस चुकी थी। ऑनलाइन कोरियन गेम्स और उससे जुड़ी 'के-कल्चर' ने उनकी चेतना पर इस हद तक कब्जा कर लिया था कि भारतीय सामाजिक यथार्थ उन्हें नीरस और असह्य लगने लगा। दक्षिण कोरिया जाकर बसने का जो डिजिटल सपना उन्होंने गढ़ा था, वह मोबाइल छिनते ही ताश के पत्तों की तरह बिखर गया। यह केवल सपने के टूटने का दर्द नहीं था बल्कि उस पहचान के खत्म



होने का आघात था, जिसे वे अपनी वास्तविक पहचान से ऊपर मानने लगी थी। इस मानसिक वियोग को वे सहन नहीं कर सकी और मौत को ही समाधान मान बैठी। इस तरह की त्रासदियां स्पष्ट चेतावनी देती हैं कि जब बच्चा आभासी पहचान को वास्तविक जीवन से बड़ा समझने लगे, तब यह केवल तकनीकी समस्या नहीं रह जाती बल्कि एक गंभीर सामाजिक और मानसिक आपातकाल बन जाती है।

मनोरंजन से मानसिक गुलामी तक : डोपामिन का मायाजाल

ऑनलाइन गेम्स अब केवल समय बिताने या मनोरंजन का माध्यम नहीं रह गए हैं बल्कि न्यूरोसाइकोलॉजी और व्यवहार विज्ञान के सूक्ष्म अध्ययनों पर आधारित ऐसे उत्पाद बन चुके हैं, जिनका उद्देश्य मानव मस्तिष्क के रिवॉर्ड सिस्टम को नियंत्रित करना है। इन खेलों को इस तरह डिजाइन किया जाता है कि वे खिलाड़ी को लगातार उत्तेजना और उपलब्धि का अनुभव कराएं, जिससे मस्तिष्क में बार-बार डोपामिन का स्राव हो। यही डोपामिन वह रसायन है, जो नशे की अवस्था में भी सक्रिय होता है और व्यक्ति को अस्थायी आनंद का आदी बना देता है। हर जीत, हर लेवल पार करना, हर वर्चुअल मेडल या इनाम मस्तिष्क को यह संकेत देता है कि वह किसी बड़ी उपलब्धि की ओर बढ़ रहा है। यह तात्कालिक संतुष्टि धीरे-धीरे इतनी प्रभावी हो जाती है कि बच्चा वास्तविक जीवन की सरल और स्वाभाविक खुशियों को महत्व देना छोड़ देता है। मैदान में खेलना, दोस्तों के साथ हंसना, परिवार के साथ बैठकर बात करना, ये सब अनुभव उसे उबाऊ और फीके लगने लगते हैं क्योंकि उनमें वही तीव्र उत्तेजना नहीं होती, जो गेमिंग की आभासी दुनिया प्रदान करती है। समस्या तब और गंभीर हो जाती है, जब यह आनंद नशे का रूप ले लेता है। जैसे ही मोबाइल छीना जाता है या गेमिंग पर रोक लगती है, किशोर विथड्रॉल सिम्पटम्स का शिकार होने लगता है। चिड़चिड़ापन, आक्रामकता, अवसाद, बेचैनी और आत्मघाती विचार उभरने लगते हैं। यह अवस्था किसी मादक पदार्थ की लत से कम खतरनाक नहीं होती। इस तरह मनोरंजन की आड़ में शुरू हुआ खेल धीरे-धीरे मानसिक गुलामी में बदल जाता है, जहां व्यक्ति का व्यवहार, भावनाएं और निर्णय उसकी नहीं बल्कि स्क्रीन के इशारों पर चलने लगते हैं।

केस स्टडीज : जब खेल बना मौत का न्यौता

डिजिटल लत के दुष्परिणाम किसी एक घटना या एक देश तक सीमित नहीं हैं बल्कि यह एक वैश्विक पैटर्न के रूप में उभर रही गंभीर सामाजिक समस्या है। अलग-अलग भौगोलिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद इन घटनाओं का मूल कारण एक ही है, ऑनलाइन गेमिंग से उपजा मानसिक दबाव और आभासी दुनिया पर अत्यधिक निर्भरता। कुछ समय पहले कुल्लू में एक 15 वर्षीय छात्र की आत्महत्या ने सबको झकझोर दिया था। जांच में सामने आया कि वह एक विदेशी गेमिंग पार्टनर से भावनात्मक रूप से जुड़ चुका था। जैसे ही उसका उससे संपर्क टूटा, बच्चे के लिए यह केवल एक ऑनलाइन दोस्त का खोना नहीं था बल्कि उसके भावनात्मक सहारे का टूट जाना था, जिसे वह सहन नहीं कर सका। इसी तरह भोपाल में एक किशोर पर ऑनलाइन गेम में मिले खतरनाक टास्क का इतना मानसिक दबाव बना कि उसने आत्मघाती कदम उठा लिया। गेम द्वारा दी गई चुनौतियां उसके लिए साहस या रोमांच नहीं बल्कि मानसिक कैद बन गई थी। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ताइवान की घटना और भी भयावह है, जहां एक युवक की गेमिंग कैफे में मौत हो गई, कारण था लगातार तीन दिन तक बिना रुके गेम खेलना। ये सभी घटनाएं स्पष्ट संकेत देती हैं कि आज गेम बच्चों को नहीं बल्कि बच्चे गेम के नियंत्रण में खेल रहे हैं और यह नियंत्रण ही कई बार जानलेवा साबित हो रहा है।

आर्थिक और सामाजिक बर्बादी का चक्र

डिजिटल गेमिंग और ऑनलाइन जुए का यह भ्रमजाल केवल किशोरों तक सीमित नहीं रहा है बल्कि यह अब समाज के परिपक्व और जिम्मेदार माने जाने वाले वर्ग को भी अपनी गिरफ्त में ले चुका है। सुल्तानपुर के एक शिक्षक का मामला इस खतरे की गंभीरता को उजागर करता है। शिक्षित और अनुभवी होने के बावजूद वह ऑनलाइन गेमिंग और जुए के उस लालच में फंस गया, जिसे आसान कमाई और त्वरित सफलता के रूप में प्रस्तुत किया गया था। शुरुआत में 18 लाख रुपये जीतने की घटना ने उसके भीतर यह भ्रम पैदा कर दिया कि वह खेल को नियंत्रित कर सकता है। यही भ्रम धीरे-धीरे लत में बदल गया। जीत की उम्मीद में उसने लगातार धन झोंका और परिणामस्वरूप सवा करोड़ रुपये के साथ-साथ पुश्तैनी जमीन तक गंवा बैठा। यह केवल आर्थिक नुकसान नहीं था बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक विश्वास और मानसिक संतुलन का भी पतन था। इसी प्रकार थाईलैंड में एक किशोर ने परिवार की जीवनभर की बचत गंवा दी। एक ऑनलाइन गेम के टास्क ने उसे 'परिवार को हैरान करने' की चुनौती दी थी, जिसे पूरा करने के जुनून में उसने सीमाओं की परवाह नहीं की। ये घटनाएं दर्शाती हैं कि डिजिटल लत केवल मानसिक नहीं बल्कि आर्थिक आत्महत्या का भी रास्ता खोल रही है, जहां एक क्षणिक रोमांच वर्षों की कमाई और रिश्तों को राख में बदल देता है।

संवाद का टूटता तंत्र और 'डिजिटल अकेलापन'

आज का समाज एक विरोधाभास में जी रहा है। हम पहले से कहीं अधिक कनेक्टेड हैं, फिर भी भीतर से उतने ही अधिक अकेले। एक ही सोफे पर बैठे चार लोग, चार अलग-अलग स्क्रीन में खोए रहते हैं। यह दृश्य अब अपवाद नहीं बल्कि सामान्य दिनचर्या बन चुका है। घर, जो कभी संवाद और भावनात्मक सुरक्षा का केंद्र होता था, धीरे-धीरे मौन का क्षेत्र बनता जा रहा है। जब घर में बातचीत, साझा समय और भावनात्मक संवाद की जगह साइलेंस ले लेता है, तब बच्चा अपनी भावनाओं का निवेश बाहर खोजने लगता है। वह सहारा, समझ और स्वीकार्यता उसे ऑनलाइन दुनिया में अजनबियों के बीच मिलती दिखाई देती है। यही वह क्षण होता है, जब डिजिटल अकेलापन जन्म लेता है, भीड़ में भी अकेलेपन की पीड़ा। इस मानसिक खालीपन का लाभ अपराधी तत्व उठाते हैं। यहीं से हनी ट्रैपिंग, साइबर



बुलिंग और डिजिटल ब्लैकमेल जैसे खतरों की शुरुआत होती है। बच्चे की भावनात्मक कोमलता को भांपकर उसे पहले दोस्ती और भरोसे के जाल में फंसाया जाता है, फिर धीरे-धीरे उससे आपत्तिजनक सामग्री की मांग की जाती है। कई मामलों में यह दबाव इतना गहरा हो जाता है कि बच्चों को आत्मघाती टास्क (जैसे खुद को चोट पहुंचाना या ऊंचाई से कूदना) के लिए उकसाया जाता है। यह संकट बताता है कि संवाद का टूटना केवल दूरी नहीं बल्कि जानलेवा खतरा बन सकता है।

गेमिंग कंपनियों की अनैतिक एल्गोरिद्मिक दुनिया

डिजिटल गेमिंग प्लेटफॉर्म्स की बढ़ती शक्ति के साथ उनकी नैतिक जिम्मेदारी पर सवाल उठाना अब टालने योग्य नहीं रह गया है। आज अधिकांश ऑनलाइन गेम्स ऐसे एल्गोरिद्म पर आधारित हैं, जिनका उद्देश्य मनोरंजन से अधिक यूजर को अधिकतम समय तक प्लेटफॉर्म से बांधे रखना है। इसे ही रिटेंशन एल्गोरिद्म कहा जाता है, जो खिलाड़ी को लगातार 'हुक' करके रखता है और उसे बार-बार खेलने के लिए प्रेरित करता है। कई गेम्स में हिंसा, जोखिम और आत्मघाती चुनौतियों को साहस, वीरता और उपलब्धि के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रस्तुति नाबालिगों के मन में जोखिम को सामान्य और आकर्षक बना देती है। सबसे चिंताजनक पहलू यह है कि नाबालिगों की सुरक्षा के लिए बनाए गए एज-वेरिफिकेशन जैसे तंत्र केवल औपचारिक साबित हो रहे हैं। वास्तविक निगरानी और जवाबदेही का स्पष्ट अभाव है। यह स्थिति एक स्पष्ट संघर्ष को दर्शाती है, कॉर्पोरेट लालच बनाम बचपन, और दुर्भाग्यवश, इस लड़ाई में फिलहाल तराजू कंपनियों के पक्ष में ही झुका हुआ दिखाई देता है।





वैश्विक पहल और भारतीय परिदृश्य : समाधान की दिशा

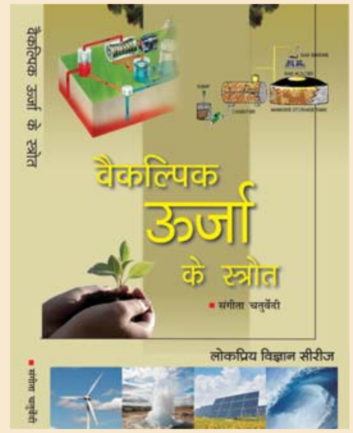
कुछ देशों ने डिजिटल लत के इस बढ़ते संकट को समय रहते पहचान लिया है। चीन ने नाबालिगों के लिए सख्त स्क्रीन-टाइम सीमाएं लागू कर यह स्पष्ट संदेश दिया कि तकनीक पर नियंत्रण आवश्यक है, विशेषकर बच्चों के मामले में। भारत में भी अब ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। सोशल मीडिया और गेमिंग प्लेटफॉर्म्स के लिए सख्त आयु सत्यापन, स्कूलों के पाठ्यक्रम में डिजिटल विवेक और मानसिक स्वास्थ्य को शामिल करना तथा ऑनलाइन गेमिंग और जुए पर प्रभावी नियामक कानून बनाना समय की मांग है। समाधान केवल कानूनों तक सीमित नहीं हो सकता। अभिभावकों को यह समझना होगा कि मोबाइल छीन लेना कोई समाधान नहीं बल्कि विद्रोह को जन्म देता है। हमें डिजिटल पैरेंटिंग अपनानी होगी। बच्चों की बात बिना जजमेंट सुनना, उन्हें खेल, संगीत और प्रकृति जैसे स्वस्थ विकल्प देना, घर में 'नो फोन जोन' और 'नो फोन टाइम' तय करना तथा स्वयं तकनीक को समझकर बच्चों की डिजिटल दुनिया में सजग सहभागिता निभाना।

स्क्रीन से बड़ा है जीवन

गाजियाबाद, कुल्लू और भोपाल की घटनाएं केवल अखबारों की सुर्खियां या आंकड़े नहीं बल्कि हमारे समाज के वे खुले घाव हैं, जो हमारी सामूहिक उदासीनता को उजागर करते हैं। तकनीक का उद्देश्य हमारे जीवन को सरल और सुरक्षित बनाना था किंतु जब वही तकनीक हमारे निर्णयों, भावनाओं और रिश्तों पर हावी हो जाए तो वह सेवक नहीं, मालिक बन जाती है। आज आवश्यकता है कि हम अपने बच्चों को यह समझाएं कि हार और जीत जीवन की स्वाभाविक प्रक्रियाएं हैं और असफलता किसी भी तरह अंत नहीं होती। वास्तविक जीवन का मूल्य किसी वर्चुअल लेवल, इनाम या डिजिटल सपने से कहीं अधिक है। अब वक्त आ गया है कि हम कुछ समय के लिए स्क्रीन बंद करें और अपने बच्चों की आंखों में झांकें। वहां भय, उम्मीद, सवाल और सपनों से भरी एक पूरी दुनिया है, जो सबसे अधिक हमारी समझ, संवाद और साथ की अपेक्षा करती है।

लेखिका डेढ़ दशक से अधिक समय से शिक्षण क्षेत्र में सक्रिय शिक्षाविद हैं और लंबे समय से देश के प्रमुख समाचारपत्र-पत्रिकाओं में लेखनरत हैं।

shweta230283@gmail.com



वैकल्पिक ऊर्जा

लेखक : संगीता चतुर्वेदी
प्रकाशक : आईसेक्ट प्रकाशन
मूल्य : 95/-

आज के इस उद्योग प्रधान युग में ऊर्जा ही विकास की धुरी है। ऊर्जा उत्पादन के लिये विभिन्न प्रकार के ईंधनों का इस्तेमाल होता है। औद्योगिक और घरेलू कार्यों के लिये ऊष्मा या ऊर्जा, कुछ दहनकारी पदार्थों को जलाने से प्राप्त की जाती है। इन्हीं दहनकारी पदार्थों को ईंधन कहा जाता है। फॉसिल ईंधन यानी पेट्रोल और कोयला ऊर्जा के प्रमुख प्राकृतिक स्रोत हैं। ये आज से करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी के नीचे दबे पड़े प्राणियों एवं पेड़ पौधों के अवशेष मात्र हैं। अत्यधिक दबाव के कारण वनस्पतियाँ चट्टानों के बीच दबकर कोयले में परिवर्तित हो गईं। इसी प्रकार जो प्राणी सागर की अतल गहराइयों में डूब गये थे उनके अवशेष कीचड़ जैसे पदार्थ में परिवर्तित हो गए और उसी कीचड़ से आज हम मिट्टी का तेल, पेट्रोलियम, डीजल, तारकोल आदि तरल ईंधन प्राप्त करते हैं। इनका हमारे दैनिक जीवन में बहुत अधिक उपयोग होता है। कोयले तथा पेट्रोल के अलावा ऊर्जा का एक अन्य प्राकृतिक स्त्रोत है गैसीय ईंधन, जो प्राकृतिक गैस से मिलता है। ये तीनों ही स्रोत ऊर्जा के अपूर्णीय स्त्रोत हैं। अर्थात् धीरे-धीरे इनका भंडार समाप्त होता जा रहा है और इनका नवीनीकरण हो पाना असंभव है। ये सभी स्त्रोत प्रदूषण भी फैलाते हैं।

ऊर्जा के अन्य स्रोतों पर बात करती यह महत्वपूर्ण कृति...।

विज्ञान कथेतर

अतीत की खिड़की से चाँद



महेश भारती

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिंगताना मंगलानिंसुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।
त्वत्संरोधापगम विशदैश्चन्दपार्देनिशीथे व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः।।

कालिदास (मेघदूत, उत्तरमेघरू ।। 9 ।।)

जहाँ (अलका में) तुम्हारी (मेघ की) रुकावट हट जाने से निर्मल (बने) चाँद की किरणों (के सम्पर्क) से स्वच्छ जल की कणिकाओं को टपकाने वाली, झालरों से लटकती हुई चन्द्रकान्त मणियाँ आधी रात के समय, प्रियतम की भुजाओं से ढीले पड़े आलिंगनों वाली स्त्रियों के अंगों में प्रेम-क्रीड़ा से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करती है।

आदिम युग से आज तक दोनों हाथों से अपनी चन्द्रिका लुटाता चन्द्रमा तिमिर संहारक की भूमिका निभाकर अपनी चाँदी जैसी दूधिया रोशनी से धरती को आलोकित करता आया है। अरबों वर्षों से ब्रह्माण्ड के नीरव निर्जन शून्य में पृथ्वी के सहयात्री की भूमिका भी निभाई है इस चमचमाते खगोलीय पिण्ड ने। मानव प्रजाति के प्रादुर्भाव काल से ही यह उसकी कौतुहल भरी जिज्ञासा का केन्द्र बिन्दु रहा है। आज कृत्रिम प्रकाश से नहाई पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य शायद अन्धेरी रातों में चाँदनी द्वारा आदिम युग में उसके क्रियाकलापों के निष्पादन को सहज बनाने में निभाई गई उसकी बेजोड़ भूमिका को सही परिप्रेक्ष्य में देखने में असमर्थ है, इक्कीसवीं सदी के दरवाज़े तक दस्तक देना मानव। भूव्योम में दुल्हन के माथे पर सुहाग बिन्दी से सजे चाँद के बिना हमारे जीवन की कल्पना ही भयावह लगती है। पूनम की किसी मदहोश रात को चन्द्रमा द्वारा अपनी शीतल स्निग्ध चाँदनी बिखेरे जाने के कारण ही मानव मन में कविता का प्रथम छन्द प्रस्फुटित हुआ होगा। विश्व की प्रत्येक भाषा के कवियों को चन्द्रमा के मनोहारी रूप और नायिका के सलोने मुख में एकरूपता दिखाई दी है। चन्द्रमा का सहारा लेकर अनेक रूपकों, उपमानों और प्रतीकों के माध्यम से इसका मानवीकरण कर सहृदय कवियों ने विपुल मात्रा में काव्य सृष्टि की है। आज यह काव्य हमारी अमूल्य साहित्य निधि की धरोहर बन चुका है। ईद का चाँद हुई प्रेयसी के चौदहवीं के चाँद जैसे मुखमण्डल की कसक भरी याद से ही सृष्टि हुई होगी-विरह काव्य की। गतिशीलता और बदलते आकार की वजह से ही इसे चंचल मानव मन का अधिष्ठाता माना गया है। जिस प्रकार चन्द्रमा के गुरुत्वीय-कर्ष के कारण समुद्र में ज्वार-भाटे आते हैं, शायद उसी प्रकार

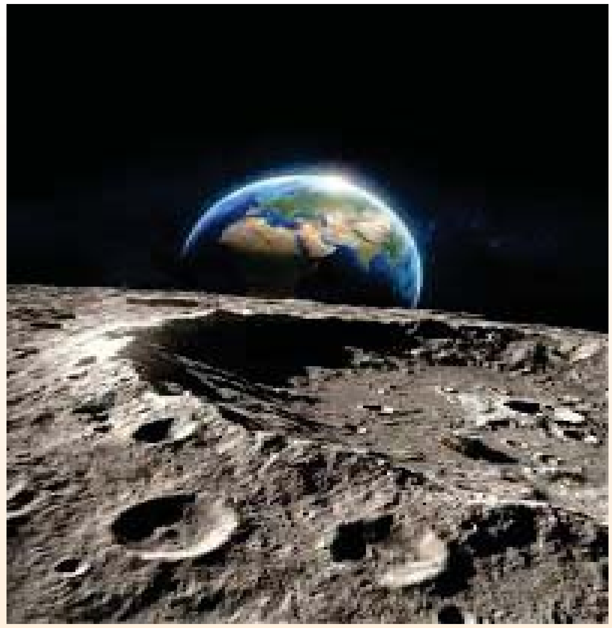
जल समृद्ध मानव शरीर पर चन्द्रमा की उपस्थिति-अनुपस्थिति तथा बदलते आकार का प्रभाव पड़ता है। चन्द्रमा के कारण हमारी मनःस्थति पर पड़ने वाले प्रभावों से कौन सहृदय अछूता रह सकता है। बहरहाल, चन्द्रमा सूर्य की सार्वभौमिक सत्ता का सशक्त प्रतीक चिह्न तो है ही।

चन्द्र-भूगोल

आम तौर पर चन्द्रमा को पृथ्वी का उपग्रह माना जाता है। पृथ्वी और चन्द्रमा के आकार का अनुपात (81.3015) है जिसे देखते हुए इन्हें बाह्य-द्वय तन्त्र कहना कहीं अधिक उपयुक्त होगा। सन् 1978 में 'प्लूटो' के ग्रह-नवग्रह-द्वय के बारे में पता लगने से पहले अपने मूल ग्रह के मुकाबले 'चन्द्रमा' को सबसे बड़ा उपग्रह माना जाता था। अब यह श्रेय 'प्लूटो' के चन्द्रमा 'शैरॉन' का दिया जाता है, जिसका आकार अपने मूल ग्रह से केवल 50 गुणा कम है। इसके मुकाबले सौरमण्डल के सबसे बड़े चन्द्रमा 'जैनीमिड' का आकार अपने मूल ग्रह बृहस्पति से 12000 गुणा छोटा है, जबकि शनि का विस्तार अपने भीमकाय उपग्रह टॉइटन से 4000 गुणा अधिक है।

चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, इसी वजह से इसे पृथ्वी के उपग्रह का दर्जा दिया गया है। वास्तविकता यह है कि पृथ्वी तथा चन्द्रमा दोनों एक साँझे गुरुत्वीय-केन्द्र की परिक्रमा करते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी को आकर्षित करता है तथा धरती चाँद को अपनी ओर खींचती है। चूँकि पृथ्वी का द्रव्यमान चन्द्रमा से करीब 81 गुणा अधिक है, अतः यह साँझा गुरुत्वीय केन्द्र पृथ्वी के भीतर पड़ता है। दरअसल, पृथ्वी की सतह से इस गुरुत्वीय केन्द्र की गहराई 1700 किलोमीटर है।

चन्द्रमा की भूमध्यरेखा पर दोपहर का तापमान 407^0 कैल्विन (134^0 सेल्सियस) है जो पानी के उबाल बिन्दु से बहुत अधिक है। आप जानते ही हैं कि चन्द्रमा जल-विहीन है। इतने ऊँचे तापक्रम के चलते यहाँ पानी का अस्तित्व कायम रह भी कैसे सकता है? यदि किसी जमाने में वहाँ पानी रहा भी होगा तो उसे वाष्पित होकर गायब होने में कितना समय लगा होगा? शायद अपने छोटे आकार के कारण चन्द्रमा अपने वायुमण्डल को सहेज कर नहीं रख पाया। जल-वाष्पीकरण की प्रक्रिया तो पृथ्वी पर भी लगातार चलती रहती है। यह बात और है कि यह वाष्पित जल पृथ्वी के वायुमण्डलीय परदे को पार नहीं कर पाता। बारिश की रिमझिम के साथ यह पुनः धरती पर लौट कर उसे



शस्य-श्यामला बनाता है। आप यह भी कह सकते हैं कि हाल ही में ल्यू नर प्रास्पॅक्टर यान ने चन्द्रमा पर बर्फ तथा पानी (?) की मौजूदगी की पक्की तस्दीक कर दी है। वास्तव में यह बर्फ तो चन्द्रमा के सदा अदृश्य रहने वाले उन गहरे खड्डों में पाई गई है जो उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवीय इलाकों में स्थित हैं। यहाँ सूर्य की किरणें कभी नहीं पहुँचती। इसी वजह से यहाँ बर्फ का अस्तित्व कायम है।

रात के वक्त चन्द्रमा पर तापमान - 153^0 सैन्टीग्रेड (120^0 कैल्विन) तक गिर जाता है। यह तापमान मंगल के सर्द तापमान को भी मात देता है जो -115^0 सैन्टीग्रेड है।

यह भी एक विचित्र बात है कि चन्द्रमा का एक दिन (अपने अक्ष के गिर्द घूमने में लगने वाला समय) उसके एक वर्ष के (पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटने में लगने वाला समय) बराबर है। हाँ, इस प्रकार की समक्रमित गति प्रदर्शित करने वाला चन्द्रमा सौरमण्डल का इकलौता उपग्रह नहीं है। अनेक अन्य उपग्रहों में भी यह विशिष्टता देखी गई है। इसका परिणाम यह है कि हम पृथ्वी से चन्द्रमा का एक ही भाग सदैव देखते हैं, दूसरा हिस्सा सदा पृथ्वीवासियों की नज़रों से ओझल रहता है। आदि मानव से लेकर आधुनिक मानव ने हमेशा चन्द्रमा की चमकती तश्तरी में गहरे रंग के धब्बों को देखा है। सत्रहवीं सदी में इन्हें 'मा रे' नाम दिया गया। इस यूनानी शब्द का अर्थ है, समुद्र। हालाँकि यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि ये समुद्र हमारे यहाँ के समुद्रों के विपरीत जल-विहीन हैं।



धरती से चन्द्रमा के जो भाग चमकते हुए दिखाई देते हैं, वहाँ स्थलाकृतियों की भरमार है। इन घनीभूत प्राकृतिक संरचनाओं से परावर्तित हुई सूर्य की किरणों के कारण ही, ये हमें चमकती हुई दिखती है। यदि इन प्रदीप्त क्षेत्रों को दूरबीन से देखा जाए तो ऊँचे-ऊँचे पहाड़, उनके उत्तुंग शिखर, खड़ी चट्टानें, घाटियों तथा अलग-अलग किस्म की स्थलाकृतियों की भूदृश्यावली, छोटे-बड़े अनगिनत वैविध्य के दृष्टिकोण से काफी सम्पन्न कहा जाना चाहिए। चन्द्रमा का यह अर्द्ध-भाग गगनचुम्बी पर्वत शृंखलाओं, खूबसूरत घाटियों तथा गहनतम क्रेटरों से समृद्ध है।

ज्यादा ऊँची पर्वतमालाएँ दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित हैं। इनमें भी लिब्निट्ज शृंखला विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसकी ऊँचाई 8000 मीटर से भी अधिक है। फैलाव की दृष्टि से उत्तरी गोलार्द्ध के पहाड़ इनसे कहीं आगे हैं। 'मा रे इमब्रियॅम' के दक्षिण-पूर्वी किनारे 'ऍपीनीन' पर्वत शृंखला स्थित है जो 605 किलोमीटर के घेरे में फैली है। चन्द्रमा के तथाकथित समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 3500 से 5500 मीटर तक है। इन पर्वत शृंखलाओं के पड़ोस में उन्नत पठारीय संरचनाओं की भी बहुतायत है। पृथ्वी से देखने पर ये उन्नत पठारी 'मा रे' नाम से प्रसिद्ध जल-विहीन समुद्रों के फर्श से उठते दिखाई पड़ते हैं। वास्तव में इनकी आभासीय उत्तुंगता भ्रामक हैं। इसकी वजह ढलानों की चमक तथा गहरे रंग की परछाइयों की आपसी विषमता है। चन्द्रमा के इन पठारी इलाकों में अनेक घाटीनुमा संरचनाएँ भी पाई जाती हैं। ज्यादा चौड़ी द्रोणियाँ इन पठारों के बीचों-बीच अवस्थित है। जहाँ पठारी क्षेत्रों में इस किस्म की भूसंरचनाओं को 'वैली' कहा जाता है, वहीं जलविहीन समुद्री इलाकों में पाए जाने वाली प्रलम्बित धसकनों को 'रिल्ज़' नाम दिया गया है।

चन्द्रमा का जो हिस्सा पृथ्वी से ओझल रहता है उसकी भूआकृतिक संरचना हमें दिखने वाले हिस्से से मिलती-जुलती ही है। हाँ, एक सबसे बड़ा अन्तर यह है कि 'मारिया' श्रेणी के सूखे समुद्रों का अस्तित्व यहाँ बिल्कुल नहीं है। प्राकृतिक घटनाओं जैसे उल्कापात अथवा ग्रहिका समाघात की बदौलत इन शुष्क समुद्रों के बनते वक्त जो चन्द्र भू-भाग सतह से बाहर निकला, उसके ज्यादातर छिन्न-भिन्न हिस्से उछल कर क्रेटरों में जा समाए। इसी वजह से अदृश्य भाग के खड्ड या तो बिल्कुल खोखले हैं या आधे भरे हुए हैं।

चन्द्र-ग्रहण

किसी वस्तु पर प्रकाश किरणें पड़ने पर जहाँ वह वस्तु आलोकित हो जाती है वहीं उसकी ओट में आने वाले उसके आकार तुल्य क्षेत्र में अन्धकार हो जाता है। चूँकि इस अन्धेरे हिस्से के पड़ोस का इलाका तो पूर्ववत प्रकाशित रहता है, अतरू इस प्रकार उत्पन्न प्रकाशीय विषमता के चलते हमें उस वस्तु का साया दिखलाई पड़ता है। ठीक इसी प्रकार, अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करती पृथ्वी और चन्द्रमा पर जब सूरज की रोशनी पड़ती है तो इनकी परछाई की सृष्टि होती है। इन खगोलिय पिण्डों के गोलाकार होने के कारण इनकी परछाई शंक्वाकार होती है। प्रकाश के स्रोत (सूर्य) से जिस ग्रह-उपग्रह की दूरी जितनी ज्यादा होती है उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होती है। पृथ्वी की छाया जब चन्द्रमा के किसी हिस्से पर पड़ती है तो चन्द्र-ग्रहण लगता है। ऐसी स्थिति तब आती है जब अन्तरिक्ष में गर्दिश करती पृथ्वी उसकी परिक्रमा करते चन्द्रमा और सूर्य के बीच आ जाती है। चन्द्रमा के जिस हिस्से को पृथ्वी ढक लेती वहाँ अन्धेरा छा जाता है। इसी को चन्द्र-ग्रहण कहते हैं। यह खगोलीय घटना पूनम की रात को ही होती है। सामान्यतः एक वर्ष में तीन बार चन्द्र-ग्रहण लगता है। यदि पृथ्वी की छाया पूरे चाँद को ढक ले तो चाँद बिल्कुल ओझल हो जाता है। तब इसे पूर्ण चन्द्र-ग्रहण कहा जाता है। यदि पृथ्वी की परछाई चन्द्रमा के कुछ ही हिस्से को ढके तो हम पृथ्वी से अधूरा चाँद ही देख पाते हैं। अब सवाल उठता है कि जब हर महीने पूनम की रात आती है तो हर बार चन्द्र-ग्रहण क्यों नहीं लगता? दरअसल, बात यह है कि चन्द्र-कक्षा पृथ्वी की कक्षा के फलक से 5° का कोण बनाती है। इसलिए आमतौर पर गर्दिश करता चाँद, पृथ्वी की परछाई के ऊपर या नीचे से गुज़रता रहता है। इसी के चलते एक साल में केवल दो या तीन बार ऐसा होता है जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सीध में होते हैं। अतः पूनम की हर रात को चन्द्रमा कलुषित नहीं होता और हम उसकी शीतल, स्निग्ध चाँदनी का भरपूर आनन्द

समुद्र में हर छह घंटों बाद लहरें उठती गिरती हैं। पहले छह घंटों में ज्वार आता है तो अगले छह घंटों के दौरान यह ज्वार धीरे-धीरे गिरता रहता है। इन्हीं गिरती लहरों जिनके चलते समुद्र-सतह का स्तर पूर्ववत अवस्था को प्राप्त करता है, भाटा कहा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 12 घंटे 25 मिनट की अवधि में ज्वार-भाटे का एक चक्र पूरा हो जाता है। चन्द्र-मुख के सामने पड़ने वाले समुद्रों में ही नहीं बल्कि उसके पीछे पड़ने वाली जल-राशि में भी ज्वार-भाटा आता है। वस्तुतः प्रत्येक साढ़े बारह घंटों बाद चन्द्रमा पृथ्वी के प्रतिमुख अथवा सम्मुख आता है। अतः एक दिन में किसी स्थान पर दो बार ज्वार-भाटा आता है।

उठा सकते हैं।

सूर्य-ग्रहण

सूर्य-ग्रहण कही जाने वाली खगोलीय घटना तब जन्म लेती है जब सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी एक सीध में आ जाते हैं तथा सूर्य और पृथ्वी के बीच स्थित चाँद की परछाई पृथ्वी पर पड़ती है। पृथ्वी के जो इलाके इस साए की चपेट में आ जाते हैं वहाँ सम्पूर्ण सूर्य या उसका कुछ हिस्सा कुछ समय के लिए दिखाई नहीं देता। पूर्ण सूर्य-ग्रहण की अवस्था में अन्धकार छा जाता है, दिन रात में बदल जाता है, दिन में तारे दिखने लगते हैं। अचानक आई इस रात से हक्के-बक्के पशु-पक्षी अलग-अलग किस्म की आवाज़ें निकालते हैं। पक्षियों को ऐसा लगता है कि साँझ हो गई और वे अपने घोंसलों की ओर लौटना शुरू कर देते हैं। एक और खास बात यह है कि सूर्य-ग्रहण केवल शुक्ल पक्ष अर्थात् अमावस्या के बाद के नव-चन्द्र दिवसों में ही लगता है। चूँकि चन्द्र-कक्षा पृथ्वी की कक्षा के समतल से 5^{0} का कोण बनाती है, अतः कभी तो चन्द्रमा पृथ्वी के कक्षा-फलक के ऊपर से तो कभी नीचे से निकल जाता है। यदि पृथ्वी और चन्द्रमा की कक्षा एक ही समतल में स्थित होती तो शुक्ल पक्ष के हर नव-चन्द्र दिवस को सूर्य ग्रहण लगता। पूर्ण सूर्य ग्रहण खगोलविदों को 'डायमण्ड रिंग' (हीरक मुद्रिका) तथा 'कॅरोना' के अध्ययन का सुअवसर प्रदान करता है। सन् 1935 में पाँच और 1982 में चार सूर्य ग्रहण लगे थे। बीसवीं सदी में भारत में दिखने वाले पूर्ण सूर्य ग्रहण 16 फरवरी, 1980 तथा 24 अक्टूबर, 1995 को लगे। इस सदी का तीसरा तथा अन्तिम खग्रास 11 अगस्त, 1999 को दिखाई देगा। अगली सदी में प्रथम खग्रास 22 जुलाई सन् 2009 के दिन देखा जा सकता है।

ज्वार-भाटा

चाँद तथा सूरज के खिंचाव के कारण समुद्र में उठने-गिरने वाली विशाल लहरों को ज्वार-भाटा कहते हैं। इनकी सृष्टि के पीछे पृथ्वी और चन्द्रमा की परस्पर गुरुत्वाकर्षण-शक्ति की मुख्य भूमिका है, हालाँकि पृथ्वी और सूर्य के बीच का खिंचाव भी कुछ हद तक इस प्रक्रिया को प्रभावित करता है। हम सभी जानते हैं कि इस खगोलीय पिण्डों का संसार गुरुत्वीय शक्ति के आपसी संतुलन पर टिका है। किसी खगोलीय पिण्ड पर कार्यरत सभी गुरुत्वीय शक्तियों का कुल असर ही इस बात का फैसला करता है कि उसकी कक्षा ब्रह्माण्ड के किन बिन्दुओं से होकर गुजरेगी। धरती तथा चाँद भी इसी शाश्वत बंधन में बंधे हैं। इस बंधन की शक्ति का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि यह 400 किलोमीटर व्यास वाली लोहे की छड़ के टुकड़े-टुकड़े कर सकती है। चूँकि यह शक्ति पृथ्वी की सम्पूर्ण सतह पर वितरित होकर काफी कमज़ोर पड़ जाती है अतः यह पृथ्वी की ठोस पपँटी पर कोई असर डालने में असमर्थ रहती है। हाँ, सामुद्रिक जल-राशि में यह हलचल पैदा कर के ज्वार-भाटों की सृष्टि अवश्य करती है।

समुद्र में हर छह घंटों बाद लहरें उठती गिरती हैं। पहले छह घंटों में ज्वार आता है तो अगले छह घंटों के दौरान यह ज्वार धीरे-धीरे गिरता रहता है। इन्हीं गिरती लहरों जिनके चलते समुद्र-सतह का स्तर पूर्ववत अवस्था को प्राप्त करता है, भाटा कहा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 12 घंटे 25 मिनट की अवधि में ज्वार-भाटे का एक चक्र पूरा हो जाता है। चन्द्र-मुख के सामने पड़ने वाले समुद्रों में ही नहीं बल्कि उसके पीछे पड़ने वाली जल-राशि में भी ज्वार-भाटा आता है। वस्तुतः प्रत्येक साढ़े बारह घंटों बाद चन्द्रमा पृथ्वी के प्रतिमुख अथवा सम्मुख आता है। अतः एक दिन में किसी स्थान पर दो बार ज्वार-भाटा आता है।

कुछ हद तक सूर्य भी ज्वार-भाटों के बनने में अपनी भूमिका निभाता है। चन्द्रमा के मुकाबले में यह प्रभाव काफी कम होता है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा की तुलना में सूर्य और पृथ्वी की परस्पर दूरी अत्यधिक है। जहाँ चाँद की चाँदनी केवल 1.3 सेकेण्ड में पृथ्वी तक पहुँच जाती है, वहीं सौर-रश्मियों को हम तक पहुँचने में 8 मिनट 16.6 सेकेण्ड

का समय लगता है। इसी के चलते ज्वार-भाटों की सृष्टि में सूर्य की भूमिका चन्द्रमा के मुकाबले केवल 45' के करीब ही है। जब परिक्रमारत पृथ्वी तथा चन्द्रमा सूर्य के साथ एक सीध में आ जाते हैं दोनों की गुरुत्वीय ताकत मिलकर अत्यंत उत्तुंग ज्वारों को जन्म देती है, जिन्हें 'बासन्तिक ज्वार' (स्प्रिंग टॉइड) कहा जाता है। ऐसे ज्वार पूर्णिमा तथा शुक्ल पक्ष में ही आते हैं। जब सूर्य तथा चन्द्रमा की खगोलीय स्थिति लम्बवत होती है तो भी पृथ्वी पर अपेक्षाकृत अधिक खिंचाव पड़ता है। ऐसे अवसरों पर आने वाले ज्वारों को 'लघु ज्वार' (नीप टॉइड) कहते हैं। इस वक्त भी लहरें 15 मीटर की ऊँचाई तक उठ सकती है।

ज्वार-भाटों की बदौलत अनेक सामुद्रिक जीव यथा सीपियाँ, घेंघे तथा केकड़े किनारे तक पहुँच जाते हैं। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक नाविक ज्वार-भाटों का ध्यान रखकर अपने आगमन-प्रस्थान कार्यक्रम तय करते थे। मछुआरे तो आज तक भी ऐसा करते हैं।

बहुरुपिया है चाँद

ईद या दूज के चाँद को देखकर क्या आपको ऐसा नहीं लगता मानो सृष्टा अपनी तूलिका एक बार ही अर्द्धचन्द्राकार घुमा कर रुक गया हो। नित नए रूप धारण करने वाले चन्द्रमा को बहुरुपिया कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। इस बहुरुपिए चाँद ने सदियों से कवियों को सम्मोहित किया है, उनकी कल्पना को उर्वरा बनाने में उत्प्रेरक की भूमिका अदा की है। आइए उन कारणों को देखें, जिनकी वजह से चाँद बहुरुपिया बनता है, सूर्य की भाँति सर्वदा एकाकार नहीं रहता।

पूनम की रात को हम पूरे चाँद को देखते हैं, पर पूरे शुक्ल पक्ष के दौरान धीरे-धीरे इसका आकार घटता रहता है। अमावस्या को चन्द्रमा फिर कृष्ण-पक्ष में इसका आकार धीरे-धीरे बढ़ने लगता है तथा एक पखवाड़े के बाद पुनः अपने पूरे आकार को प्राप्त कर लेता है। चन्द्रमा के इन्हीं नित नए आकार को चन्द्र-कलाएँ (फेज़िज ऑव मून) कहा जाता है। हकीकत यह है चन्द्रमा का आकार कभी नहीं बदलता। पृथ्वी के परिक्रमारत चन्द्रमा की बदलती स्थिति के कारण यह हमें घटता-बढ़ता दिखाई देता है। जब यह पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाता है तो इसकी अंधेरे में डूबी सतह धरती की ओर तथा प्रकाशित भाग दूसरी ओर होने के कारण यह अदृश्य हो जाता है। अमावस्या के बाद धीरे-धीरे



जब परिक्रमागत चन्द्रमा की खगोलीय स्थिति में बदलाव आता है तो क्रमशः प्रकाशित भाग का आकार बढ़ने-लगता है। एक सप्ताह बाद यह अर्द्धवृत्ताकार रूप ग्रहण कर लेता है। पखवाड़े के आखिर में पूनम की रात को चन्द्रमा अपने पूर्ण वृत्ताकार वैभव में धरती पर चाँदनी बिखेरता है। आप समझ ही गए होंगे-हम पूनम की रात की बात कर रहे हैं। इस समय पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा सूर्यास्त के बाद उदय होकर सूर्योदय के वक्त अस्त होता है। ज्ञातव्य है कि एक समान अवधि में अपनी धुरी तथा पृथ्वी दोनों की परिक्रमा पूरी करने के कारण चन्द्रमा का एक ही भाग हमेशा पृथ्वी की ओर रहता है। सूरज की परावर्तित रोशनी के कारण चाँद का यह हिस्सा हमें चमकता हुआ दिखाई देता है।

इतिहास के झरोखे से

- चन्द्रमा पर पहाड़ों की उपस्थिति का प्रथम संकेत यूनानी दार्शनिक डैमोक्रिट्स ने पाँचवी शताब्दी ईसापूर्व में दिया। इससे कुछ पहले ज़िनोफैन्स ने तो यहाँ तक कहा कि धरती के अलग-अलग हिस्सों के अलग-अलग चाँद और सूरज हैं।
- सन् 1600 ई. के आसपास डब्ल्यू गिल्बर्ट ने चन्द्रमा का प्रथम मानचित्र तैयार किया। उन्होंने यह नक्शा बगैर दूरबीन की सहायता के तैयार किया था। सन 1603 ई. में उनकी मृत्यु के काफी समय बाद 1651 ई. में यह मानचित्र प्रकाशित किया गया। सन 1610 ई. के बाद चन्द्रमा के पर्वत-शिखरों की ऊँचाई का अन्दाज़ा लगाने का पहला गम्भीर प्रयास गैलीलियो ने किया। उन्होंने चन्द्रमा की एपेनीन पर्वत शृंखला की ऊँचाई नापी। हालाँकि बाद में उनके द्वारा नापी गई ऊँचाई ज्यादातर मामलों में वास्तविकता से अधिक निकली परन्तु पहाड़ों की चोटियों का ऊँचाई के हिसाब से जो क्रमानुक्रम उन्होंने बताया था, वह आज तक



गलत साबित नहीं हुआ। सन् 1778 में जे. एच. सक्रोट्र ने इस बाबत कहीं अधिक परिशुद्ध गणना की। दूरबीन की मदद से चाँद का पहला नक्शा बनाने का श्रेय थॉम्मस हैरियॅट को दिया जाता है। उनका मानचित्र 1610 में गैलीलियो द्वारा बनाए गए नक्शे से कहीं अधिक यथार्थ था। इसमें अनेक प्रकार की स्थलाकृतियों को दर्शाया गया था। वेल्स निवासी सर विलियम लॉवर पहले ब्रिटिश नागरिक थे जिन्होंने दूरबीन की मदद से सन 1611 में चन्द्रमा का खाका खींचा। उनके द्वारा बनाया गया रेखाचित्र आजकल उपलब्ध नहीं है। उन्होंने कहा कि चन्द्रमा की आकृति उनके खानसामा द्वारा बनाई गई मीठी कचौरी जैसी है।

- अर्द्धचन्द्र के अदृश्य भाग के धुंधलेपन की पहली सही व्याख्या लियोनार्दो दॉ विंची (1452-1519) ने की। उन्होंने कहा कि ऐसा पृथ्वी द्वारा परावर्त्तित प्रकाश के चन्द्रमा पर पड़ने से होता है।
- चन्द्र भू-आकृतियों की पहली नामांकन प्रणाली सन् 1645 में लैग्रेनॅस द्वारा प्रस्तुत की गई। उसके बाद सन् 1647 में हैवेलियॅस ने एक और प्रणाली सुझाई। हालाँकि आजकल इन दोनों प्रणालियों में से कोई भी प्रचलन में नहीं है। उदाहरण के लिए जिस खड्ड को आजकल 'प्लेटो' कहा जाता है उसे हैवेलियस महोदय ने ग्रेट ब्लैक लेक कहा था। आधुनिक नामांकन प्रणाली सन् 1651 में जी. रिसियॉली ने प्रस्तुत की थी। इसके तहत भू-आकृतियों के नाम वैज्ञानिकों तथा अन्य महान विभूतियों के नामों पर रखे गए। हाँ, उनके रवैये को पक्षपातपूर्ण अवश्य कहा जा सकता है। एक महत्त्वपूर्ण भू-आकृतिक संरचना को तो उन्होंने अपना नाम ही दे डाला। एक अन्य संरचना का नामकरण उनके द्वारा अपने प्रिय शिष्य ग्रिमॉल्डी के नाम पर किया गया। चूँकि वे कॉपरनिक्स की इस अवधारणा से सहमत नहीं थे कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है, अतरू उन्होंने कॉपरनिक्स महोदय को एक तूफानी समन्दर (ओसिएनिस परोसिलेरम) में फेंक दिया। उनके द्वारा चलाई गई यह नामांकन पद्धति आज भी प्रचलन में है।
- सन् 1775 में टी. मॉयर ने पहली चन्द्र-निर्देशांक (को-ऑर्डिनेट) प्रणाली विकसित की। सन् 1839 में एफ. डब्ल्यू. बैसेल ने सौर-मापी (हीलियोमीटर) की मदद से पहली परिशुद्ध गणनाएँ प्रस्तुत की।
- चन्द्रमा के समक्रमित नर्तन के विषय में पहली स्पष्ट घोषणा सन् 1693 में जी. डी. कैसिनी ने की। शायद गैलीलियो को भी इस विषय में जानकारी थी। चन्द्रमा को पृथ्वी के चारों ओर एक परिक्रमा पूर्ण करने में जितना समय लगता है उतने ही वक्त में वह अपने अक्ष के चारों ओर भी घूम जाता है। यह अवधि 27.3 पृथ्वी दिवसों के बराबर है। इसका परिणाम यह होता है कि चन्द्रमा का एक ही हिस्सा सदैव पृथ्वी की ओर रहता है। दूसरे भाग को हम कभी नहीं देख पाते। चन्द्रमा की कक्षीय उत्केन्द्रता के कारण कुछ ऐसे इलाके ज़रूर हैं जो कभी दिखते हैं तो कभी हमारी नज़रों से ओझल हो जाते हैं। पृथ्वीवासी कुल मिलाकर चन्द्रमा के 59’ हिस्से को देखने में समर्थ हैं, जबकि बचा हुआ 41’ क्षेत्र सदा अदृश्य रहता है।
- हालाँकि चन्द्रमा पर रिल्स के दर्शन ह्यूगन्स महोदय ने भी किए थे परन्तु इनके विस्तृत वर्णन का श्रेय जे एच स्क्रोटर को दिया जा सकता है जिन्होंने सन् 1778 में यह काम पूरा किया। रिल्स, दरअसल, लम्बी परन्तु तंग खन्दकनुमा वादियाँ हैं जो चन्द्र-तल पर काफी संख्या में मौजूद हैं।
- चन्द्रमा का पहला स्पष्ट मानचित्र सन् 1937-38 में डब्ल्यू बीयर तथा जे एच मैडलर ने बनाया। जर्मनी के बर्लिन शहर में रहने वाली इस खगोलविद् जोड़ी ने एक छोटी सी परावर्तक किस्म की दूरबीन का प्रयोग करते हुए चन्द्र सतह का जो खाका खींचा, वह वास्तव में अद्भुत था। इस नक्शे को दशकों तक सर्वश्रेष्ठ माना जाता रहा। उन्होंने 'डेर मौंड' के नाम से एक पुस्तक भी प्रकाशित की जो चन्द्र सतह के रहस्यों पर से परदा उठाने वाली पहली किताब मानी जा सकती है। अंग्रेज़ी में इस श्रेणी की पहली किताब ई. निसॅन द्वारा 1876 में लिखी गई। इस चन्द्र-विषयक पुस्तक में एक

4 मई 1783 तथा 19.20 अप्रैल 1787 को सर विलियम हर्सेल ने चन्द्र सतह पर सक्रिय ज्वालामुखियों को देखने का दावा किया। शायद उन्होंने पृथ्वी की रोशनी से चमकने वाले इलाके देखे थे। टी एल पी अर्थात ट्रांजिएन्ट ल्यूनर फिनॉमिनॉ (अल्पकालिक चन्द्र घटना) के बारे में आधुनिक युग में भी अनके बार सुनने को मिलता रहता है। सन् 1958 में क्रीजिरेव ने चन्द्रमा के अलफॉन्सस इलाके में घटी इसी प्रकार की घटना की फोटो द्वारा पुष्टि कर दी। 30 अक्टूबर 1963 को एक परिवर्तन लॉवल वेधशाला के वैज्ञानिकों ने जे. ग्रीनेकॅर तथा जे बॉर को अरिस्टारक्स क्षेत्र में दृष्टिगोचर हुआ। सन् 1967 में बी. मिडलहर्स्ट तथा पैट्रिक मूर महोदय ने ऐसी घटनाओं की एक विस्तृत सूची का प्रकाशन किया।

मानचित्र भी शामिलथा जो, दरअसल, बीयर तथा मैडॅलर के ही नक्शे का सुधरा हुआ रूप था। चाँद का सबसे बड़ा मानचित्र वेल्स निवासी चन्द्र विशेषज्ञ एच. पी. विलिकिन्स ने बनाया। इसका व्यास 300 इंच अर्थात् 10 फीट के आसपास था। इसका अन्तिम संस्करण, जिसमें एक तिहाई मापनदण्ड का प्रयोग किया गया, सन् 1959 में प्रकाशित हुआ।

- 23 मार्च, 1840 को जे डब्ल्यू ड्रेपर ने 5 इंची परावर्तक दूरबीन की मदद से चन्द्रमा का पहला फोटो उतारा। यह चित्र एक वर्ग इंच आकार का था इसको लेने के लिए दूरबीन में लगे कैमरे के छिद्र को 20 मिनट तक खुला रखा गया था। सन् 1899 में फ्रांसिसी खगोलविदों लोवि तथा पुँसुँए ने चन्द्रमा की एक सुन्दर फोटो-एटलस प्रकाशित की।
- सन् 1822 में एक जर्मन खगोलविद वॉन पी ग्रूथिसिन ने तो हद ही कर दी। उन्होंने चन्द्रमा पर विशाल नगर-परकोटों को देखने का दावा किया। अतः उन्होंने चन्द्रमा पर बसे एक शहर के अस्तित्व की उद्घोषणा कर डाली। बाद में रहस्य खुला कि उन्हें जो कुछ दिखाई दिया था, वह वास्तव में, कम ऊँची, आड़ी-तिरछी कटक-शृंखला थी। सर विलियम हर्शल जैसे धुरन्धर खगोल-विज्ञानी ने भी सन् 1790 में यह विश्वास प्रकट किया था कि चन्द्रमा आबाद है। सन् 1835 में न्यूयॉर्क से छपने वाले समाचार पत्र सॅन में एक समाचार छपा था जिसमें केप ऑव गुड होप अर्थात् आशा अन्तरीप में सर जॉन हर्सेल द्वारा की गई खोज का वर्णन किया था। आर. ए. लॉक नामक संवाददाता के नाम से प्रकाशित इस रपट में चन्द्रमा का चमगादड़नुमा मनुष्य तथा क्वाट्र्ज-पर्वतों की कहानी गढ़ी गई थी। 25 अगस्त 1835 को छपी इस रिपोर्ट के तीन सप्ताह बाद ही सॅन ने नकारते हुए इसके प्रकाशन के लिए खेद प्रकट कर दिया।
- चन्द्रमा की किसी भूआकृतिक संरचना के बदलते स्वरूप के बारे में सबसे पहले सन् 1866 ऍथेन्स नगर के खगोलविद् जे रिकॅमट ने जानकारी दी। उन्होंने घोषणा कर दी कि मा'रे सिरॅनीटेटिस के बीच मौजूद एक क्रेटर लिने के चारों ओर उन्होंने एक सफेद धब्बा देखा है जो पहले वहाँ मौजूद नहीं था। यह विवाद वर्षों तक चर्चा में रहा। जाहिर है यह केवल उनका दृष्टिभ्रम ही था।
- 4 मई 1783 तथा 19-20 अप्रैल 1787 को सर विलियम हर्सेल ने चन्द्र सतह पर सक्रिय ज्वालामुखियों को देखने का दावा किया। शायद उन्होंने पृथ्वी की रोशनी से चमकने वाले इलाके देखे थे। टी एल पी अर्थात ट्रांजिएन्ट ल्यूनर फिनॉमिनॉ (अल्पकालिक चन्द्र घटना) के बारे में आधुनिक युग में भी अनके बार सुनने को मिलता रहता है। सन् 1958 में क्रीजिरेव ने चन्द्रमा के अलफॉन्सस इलाके में घटी इसी प्रकार की घटना की फोटो द्वारा पुष्टि कर दी। 30 अक्टूबर 1963 को एक परिवर्तन लॉवल वेधशाला के वैज्ञानिकों ने जे. ग्रीनेकॅर तथा जे बॉर को अरिस्टारक्स क्षेत्र में दृष्टिगोचर हुआ। सन् 1967 में बी. मिडलहर्स्ट तथा पैट्रिक मूर महोदय ने ऐसी घटनाओं की एक विस्तृत सूची का प्रकाशन किया। सन् 1971 में सर पैट्रिक मूर ने नासा के सौजन्य से इसका एक परिशिष्ट भी प्रकाशित किया। इस सूची में कुल 713 अल्पकालिक चन्द्र-घटनाओं का वर्णन है। हालाँकि इनमें से बहुत सी घटनाएँ केवल दृष्टिभ्रम का परिणाम हैं फिर भी अनेक परिवर्तनों की विश्वसनीयता संदेह से परे है। निष्कर्ष यह है कि चन्द्रमा, निर्माण-वैज्ञानिक दृष्टि से पूरी तरह निष्क्रिय नहीं है।
- अंग्रेज़ी में एक कहावत है-वंस इन ए ब्ल्यू मून, जिसका अर्थ है कभी-कभी होने वाली दुर्लभ घटना। यह कहावत शायद इसलिए बनी क्योंकि कभी-कभी चन्द्रमा

सन् 1946 में हंगरी के खगोलविद् जैड. बे. ने रॉडॉर किरणों द्वारा चन्द्रमा की पहली प्रतिध्वनि प्राप्त की। हाल ही में जे. फॅलर तथा लिक ने अमरीका के अरिजोना प्रान्त में स्थित 1.4 मीटर व्यास की परावर्तक दूरबीन कैटेलिना की मदद से से लेज़र प्रणाली द्वारा पृथ्वी और चन्द्रमा की परस्पर दूरी को सही-सही नापा। उनके अनुसार यह दूरी 353911.218 मीटर है। इस आकलन में त्रुटि की सम्भावना केवल 45 मीटर ही है। चन्द्रमा तक पहुँचते वक्त लेज़र किरण का व्यास 4 किलोमीटर था। चन्द्रमा का प्रथम एक्स-रे चित्र 29 जून, 1990 को रोजेट् उपग्रह द्वारा प्राप्त किया गया।

हमें नीले रंग का दिखाई देता है। ऐसा आसमान में टंग धूल कणों द्वारा नील-वर्णी प्रकाश को परावर्त्तित करने की वजह से होता है। सबसे मनोहारी नील-चन्द्रमा के दर्शन 26 सितम्बर सन् 1950 को हुए। कनाडा के जंगलों में लगी भयंकर आग की बदौलत धूल-कणों के आकाश में छा जाने से ऐसा संभव हुआ। 27 अगस्त, 1883 को अमरीका के हवाई-द्वीप स्थित क्रॅकटोवा ज्वालामुखी के फटने की घटना के बाद भी नील-वर्णी चाँद देखा गया। 14 फरवरी 1884 को स्वीडन-वासियों द्वारा तीन मिनट तक हरे रंग का चन्द्रमा देखा गया। राजधानी स्टॉकहोम के निवासियों ने भी इसी वर्ष 14 जनवरी को हरित चन्द्रमा का दर्शन-लाभ प्राप्त किया।

- चन्द्रमा के तापमान के बारे में किसी हद तक सही जानकारी देने का प्रथम प्रयास आयरलैण्ड स्थित बिर्र कैसल से रोसे के चतुर्थ अर्ल द्वारा किया गया। उन्होंने संकेत दिया कि दोपहर के समय चन्द्रमा पर तापमान 100^{0} सैन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है, हालाँकि बाद में किसी गलतफहमी की वजह से उन्होंने दावा किया किया कि चन्द्रमा पर तापमान 0^{0} सैन्टीग्रेड से अधिकत नहीं होता। वास्तव में दोपहर के वक्त वहाँ तापमान 117^{0} सैन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है जो रात के समय -163^{0} सैल्सियस तक गिर जाता है।
- सन् 1946 में हंगरी के खगोलविद् जैड. बे. ने रॉडॉर किरणों द्वारा चन्द्रमा की पहली प्रतिध्वनि प्राप्त की। हाल ही में जे. फॅलर तथा लिक ने अमरीका के अरिजोना प्रान्त में स्थित 1.4 मीटर व्यास की परावर्तक दूरबीन कैटेलिना की मदद से से लेज़र प्रणाली द्वारा पृथ्वी और चन्द्रमा की परस्पर दूरी को सही-सही नापा। उनके अनुसार यह दूरी 353911.218 मीटर है। इस आकलन में त्रुटि की सम्भावना केवल 45 मीटर ही है। चन्द्रमा तक पहुँचते वक्त लेज़र किरण का व्यास 4 किलोमीटर था। चन्द्रमा का प्रथम एक्स-रे चित्र 29 जून, 1990 को रोजेट् उपग्रह द्वारा प्राप्त किया गया।
- मा'रे नाम से पुकारे जाने वाले नियमित शुष्क समुद्रों में मा'रे इमब्रियम सबसे बड़ा है। यह 1300 किलोमीटर के घेरे में फैला है तथा इसकी अधिकतम गहराई ७ किमी है। अन्य शुष्क समुद्रों में ओरियन्टल का व्यास 965 किमी है। सिरिनटेटिस (690-885 किमी) क्रिसियम (590-460) ह्यूमॉरम (423-460) हम्बोल्डटिएनम (305-410 किमी) प्रमुख हैं। क्रिसियम समुद्र पूर्व से पश्चिम दिशा में स्थित सबसे बड़ा मा'रे क्षेत्र है। अनियमित आकार का शुष्क समुद्र ओसिएनिस परोसिलेरॅम नियमित मा'रे क्षेत्र इमब्रियम से कहीं अधिक बड़ा है। यह धँसा हुआ क्षेत्र केवल एक किलोमीटर गहरा है। जबकि मा'रे क्रिसियम की गहराई चार किमी है। सन् 1938 में विल्कन्स तथा मूर खगोलविदों ने ओरियन्टल समुद्र की खोज की। विशाल चन्द्र समुद्रों में यह इकलौती धसकन है जो चन्द्रमा की अदृश्य सतह तक फैली हुई है। अतः पृथ्वी से इसका दिग्दर्शन टेढ़ी खीर है।
- चन्द्रमा पर पाई जाने वाली सर्वाधिक विस्तृत द्रोणि (बेसिन) दक्षिण ध्रुवीय इलाके में स्थित ऍटकिन है। इसका व्यास 2500 किमी तथा गहराई 13 किमी है। सन् 1994 में क्लैमेन्टाइन यान द्वारा इसके सर्वेक्षण के दौरान पता लगा कि यह नदी-घाटी, चन्द्र-परिधि के चौथे हिस्से को घेरे हुए है। खगोलविदों का विश्वास है कि यह एक उल्का-समाघात द्रोणि है। इसका निर्माण आज से 430 से 380 करोड़ वर्ष पहले के कालखण्ड के दौरान एक 200 किमी व्यास की उल्का के चन्द्रमा पर आ गिरने से हुआ।
- चन्द्रमा पर पाए जाने वाले क्रेटरों में बैली नाम का खड्ड

चन्द्रमा की स्थलाकृतियों का मामला काफी विवादास्पद रहा है। इस विषय में अनेक हैरतअंगेज बातें समय-समय पर कही जाती रही है। सन् 1943 में चन्द्र विशेषज्ञ पी. फॉथ ने यह दावा किया कि चन्द्र-सतह पर बर्फ से ढकी हुई है। वीज़बॅरगॅर महोदय ने तो चन्द्रमा पर पर्वतों और क्रेटरों के अस्तित्व को ही नकार दिया था। दूरबीन द्वारा पृथ्वी से दिखने वाले ऊँचे-नीचे इलाकों को वे दृष्टिभ्रम कहते थे। उनके मतानुसार चन्द्रमा के घने वायुमण्डल में तूफानों और चक्रवातों के कारण इन पर्वतों और खड्डों के अस्तित्व का आभास होता है।

लगभग 4 किमी गहरा है। चन्द्रमा के दृश्य भाग में स्थित क्रेटरों में क्लैवियस (232-4.91 मीटर) दूसरी महत्त्वपूर्ण भू-आकृति है। अधिक बड़े क्षेत्र में फैले क्रेटर अपेक्षाकृत उथले हैं। इनमें टौलेमेंस की गहराई 2.4 किमी तथा विस्तार 148 किमी है। केन्द्रीय संरचनाओं वाले खड्डों में थियोफिलॅस (व्यास 101 किमी, गहनता 4.4 किमी) कॉपरनिकस (97-3.8 किमी), टॉइको (84-4.8 किमी) प्रमुख हैं। गहरे रंग के विशाल क्रेटर प्लैटों की गहराई 2.4 किमी है। न्यूटन नाम का क्रेटर अपनी समकक्ष भू-आकृतिक संरचनाओं में गहनतम है। सतह से 2.25 किमी ऊँची उठी अपनी चोटी से इसका तल 8.85 किमी गहरा है। पृथ्वी के परावर्तित प्रकाश में सबसे अधिक चमकने वाला क्रेटर अरिस्टॉरक्स है। ग्रिमाल्डी नामक क्रेटर की तलहटी सबसे अन्धकारमय क्षेत्र है। सबसे विशाल अर्ध-रैखिक क्रेटर टाईको है। पूनम की रात को इसकी अर्द्ध रेखाएँ साफ दिखाई देती हैं। इसके बाद ओसिएनिस परोसिलेरम (तूफानी समन्दर) में स्थित क्रेटर कॉपरनिक्स का नम्बर आता है। अन्य अर्द्ध-रैखिक खड्डों में कैपॅलर, ओल्बर्स, एनैस्सागॉरस तथा थेल्स को गिनाया जा सकता है।

- ठण्डे हुए लावा से भरा क्षेत्र वारजैन्टिन चन्द्रमा का सबसे प्रसिद्ध पठारी इलाका है। इसके अतिरिक्त बाकी सभी पठार अपेक्षाकृत छोटे तथा अनियमित हैं। चन्द्रमा पर पाई जाने वाली घाटीनुमा संरचनाओं में हैडले सबसे प्रसिद्ध है। यह चन्द्रघाटी 135 किलोमीटर लम्बी एक से दो किमी चौड़ी तथा 370 मीटर गहरी है। अपोलो-15 के चन्द्रयात्रियों ने इस घाटी में विचरण करते हुए इसको सर्वेक्षण किया था। इसके अलावा तथाकथित समुद्र मा'रे वैपोरॅम में अवस्थित हाइलिनॅस, आरियेड्स चन्द्रघाटियाँ भी चर्चित रही है। बॅर्ग, सिरसॅनिस, हैसिओड्स ट्राइसनैकर, रैम्सडैन तथा हिपैलैस आदि कुछ अन्य नदी घाटियाँ भी वहाँ मिलती हैं। एस्टिआरक्स क्षेत्र में प्रि तथा केपुएनॅस की तलहटी में ये तलहटी में ये स्थलाकृतियाँ अपेक्षाकृत अधिक सघन हैं।
- सन् 1945 में अमरीकी भूगर्भविज्ञानी जे. ई. स्पॅर ने पहली बार निश्चित दिशा में संयोजित रैखिक भू-आकृतिक श्रृंखलाओं के बारे में हमें जानकारी दी। स्पॅर महोदय ने इस किस्म की स्थलाकृतियों को ग्रिडॅ (जंगले जैसी आकृति) नाम दिया। अनेक खगोलविदों की यह पक्की धारणा है कि इस किस्म की संरचनाएँ अतीतकालीन चन्द्रमा की गवेषणा हेतु महत्त्वपूर्ण सुराग उपलब्ध करवाती हैं।
- चन्द्रमा की स्थलाकृतियों का मामला काफी विवादास्पद रहा है। इस विषय में अनेक हैरतअंगेज बातें समय-समय पर कही जाती रही है। सन् 1943 में चन्द्र विशेषज्ञ पी. फॉथ ने यह दावा किया कि चन्द्र-सतह पर बर्फ से ढकी हुई है। वीज़बॅरगॅर महोदय ने तो चन्द्रमा पर पर्वतों और क्रेटरों के अस्तित्व को ही नकार दिया था। दूरबीन द्वारा पृथ्वी से दिखने वाले ऊँचे-नीचे इलाकों को वे दृष्टिभ्रम कहते थे। उनके मतानुसार चन्द्रमा के घने वायुमण्डल में तूफानों और चक्रवातों के कारण इन पर्वतों और खड्डों के अस्तित्व का आभास होता है। सन् 1951 में खगोलविद ओकॅम्पो ने तो हद ही कर दी। उन्होंने कहा कि चन्द्रमा पर मिलने वाले खड्ड, दरअसल, चन्द्रमा पर रहने वाले मनुष्यों के दो खेमों के बीच होने वाले आणविक युद्धों का नतीजा है। अलग-अलग किस्म के क्रेटरों के बारे में उन्होंने स्पष्ट किया कि यह दोनों पक्षों द्वारा प्रयुक्त किए गए एटॅमी हथियारों के आकार-प्रकार में फर्क का नतीजा है। यह तो रहा-हमारी उपजाऊ कल्पना शक्ति का नतीजा। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि ये विचित्र तथ्य वैज्ञानिक कसौटी पर खरे नहीं उतरे। हाँ, हाल के वर्षों में यह बात खगोलविदों की गवेषणा का विषय रही है कि ये भूआकृतियाँ, ज्वालामुखी सक्रियता का परिणाम हैं या चन्द्रमा पर

गिरनेवाली ग्रहिकाओं तथा उल्काओं की टकराहट के बाद बनी समाघात धसकनें हैं। पहले सिद्धान्त के पक्षधरों में अमरीकी खगोलविद जैकग्रीन, गिल्बर्ट फील्डर तथा पैट्रिक मूर का नाम लिया जा सकता है। इस पक्ष का कहना है कि चन्द्रमा पर पाए जाने वाले खड्ड बेतरतीब न होकर कुछ खास चन्द्र क्षेत्रों तक सीमित है। यदि इनका निर्माण गाहे-बगाहे चन्द्रमा से टकराने वाली चट्टानों से हुआ होता तो इनके वितरण में किसी प्रकार का संयोजन लगभग असम्भव होता। दूसरे अपोलो-यात्रियों द्वारा जो नमूने इस इलाके से लाए गए उनकी बनावट में विशिष्ट उल्का तत्वों की मात्रा बहुत कम है। इन चट्टानी नमूनों में ज्वालामुखी सक्रियता से निर्मित आग्नेय तत्वों का प्रतिशत सर्वाधिक है। आजकल उल्का-समाघात सिद्धांत लगभग सर्वमान्य हो चला है। पहले-पहल यह अवधारणा पॉलग्रूथिसियन ने सन् 1824 में प्रस्तुत की थी। सन् 1892 में चन्द्रविद जी. के. गिल्बर्ट ने इन सिद्धान्त का समर्थन किया। आधुनिक रूप में इस अवधारणा का परिष्कार करने में रॉल्फ बॉल्डविन अग्रणी रहे हैं। इस खेमे के झण्डाबरदारों का मानना है कि चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों का ही निर्माण आज से 4.6 अरब वर्ष पहले हुआ था। निर्माणकालिक चन्द्रमा अत्यधिक गर्म था। सतह से सैकड़ों किलोमीटर नीचे तक चन्द्रमा गर्म लावा से भरपूर था। हल्के तत्व तथा धातुएँ सतह की ओर आ गई जबकि सघनतर खनिज, तरल अवस्था में चन्द्रमा के पाताल-लोक तक जा पहुँचे। जब पिघली हुई आग्नेय चट्टानों से उल्काश्म तथा क्षुद्र ग्रह टकराए तो कहीं मारिया क्षेत्रों की सृष्टि हुई तो कहीं गहरे खड्डों का जन्म हुआ। कहा जाता है कि चन्द्रमा तथा पृथ्वी दोनों ही के जन्म के समय उल्काओं के गिरने की आवृत्ति बहुत अधिक थी। मा' रे नाम से प्रसिद्ध सूखे समुद्रों में ट्रांक्विलेटटिस तथा फिकॉण्डटेटिस की आयु 4.5 अरब वर्ष है। एक और धसकन मा' रे ऑरिएन्टल 395 करोड़ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आई। 390 से 320 करोड़ वर्ष के बीच के 70 करोड़ वर्षीय कालखण्ड में चन्द्रमा पर ज्वालामुखी सक्रियता का एक खास दौर चला। आग उगलते ज्वालामुखी चन्द्र-गर्भ से लावा सतह की ओर छोड़ने लगे। यह लावा निचली मारिया संरचनाओं की तलहटी में फैलता रहा। फिर जब यह ज्वालामुखीय सक्रियता थमी तो इस गर्म लावा ने धीरे-धीरे ठण्डा होकर धातु-समृद्ध आग्नेय-चट्टानों का रूप ग्रहण कर लिया। तब से अब तक चन्द्रमा भू-निर्माण वैज्ञानिक दृष्टि से लगभग निष्क्रिय है। यदा-कदा भूली-भटकी उल्काओं अथवा ग्रहिकाओं की टक्कर चन्द्र-सतह से होती रहती है। कालान्तर में इन टकराहटों की बदौलत अनेक समाघात-द्रोणियाँ बनती रही हैं। कॉपरनिक्स समाघात-बेसिन का निर्माण 100 करोड़ वर्ष पहले होने के प्रमाण मिलते हैं। कतिपय लघु द्रोणियों की आयु इससे भी कम है।

- सन् 1968 में पी. मुलॅर तथा डब्ल्यु एल. स्योग्रेन ने आर्बिटर-5 चन्द्र-परीक्षण यान की मदद से पहली चन्द्रमा पर मैसकॉन (मॉस कंस्ट्रेशन अर्थात संघनित द्रव्यमानयुक्त इलाके) की उपस्थिति के बारे में रहस्योद्घाटन किया। अपेक्षाकृत सघनतर क्षेत्र विभिन्न चन्द्र स्थलाकृतियों जैसे इमब्रियम, क्रीज़ियम, स्मिथई, सिरैनिटेटिस, ह्यूमॉरम, नैकटेरिस, हम्बोल्डटिएनम, ऑरियन्टेल, ऐस्टयूम तथा ग्रिमॉल्डी इत्यादि के नीचे अवस्थित हैं। कुछ अन्य भौगोलिक संरचनाओं जैसे कॉपरनिकस के नीचे दबे इलाकों की सघनता काफी कम है। मारिया कहे जाने वाले शुष्क समुद्री क्षेत्रों के सीमान्त इलाकों में पाई जाने वाली भू-आकृतियों के मामले में अल्पकालिक चन्द्र-घटनाओं की आवृत्ति कहीं अधिक है। यह मत सन् 1968 में बी. मिडॅलहर्स्ट तथा सर पैट्रिक मून ने व्यक्त किया था।

भारतीय प्रशासनिक सेवा में रहे महेश भारती का मूल नाम महेश गुप्ता है। विज्ञान, स्पेस, और विविध विषयों पर आपने महत्वपूर्ण लेखकीय कार्य किया है। आप एक कुशल विज्ञान संचारक भी हैं। चांद से मंगल तक 'चांद के पार चलो' और 'मून पर हनीमून' आपकी चर्चित कृतियाँ हैं। आप ब्रिटिश इंटरप्लेनेटरी सोसायटी, लंदन के मानक सदस्य हैं।

mkg12312@gmail.com

स्थापत्य

अजंता गुफाओं के चित्रों के संरक्षण के वैज्ञानिक आयाम



कुमार सुरेश

हमारे देश के महाराष्ट्र प्रदेश में औरंगाबाद जिले में स्थित विश्व धरोहर स्थल, अजंता की विश्व प्रसिद्ध गुफ़ाएं एक ऐसा पर्यटन स्थल है जहाँ इतिहास, संस्कृति, कला,अध्यात्म और विज्ञान सभी एक ही स्थान पर समाहित हैं। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर चौथी ईस्वी शताब्दी तक यहाँ पत्थर के पहाड़ को धीरे-धीरे छैनी हथोड़े से काट कर कर बड़े-बड़े कक्ष बनाए गए थे और इन कक्षों की दीवारों और भीतरी छतों पर भगवान बुद्ध के जीवन से संबधित जातक कथाओं पर आधारित अद्भुत चित्रकारी की गई थी। सैकड़ों साल बीत गए हैं जब कलाकर इस अंतहीन और सार्थक कार्य में व्यस्त रहते होंगे। घनघोर जंगल के बीच पहाड़ की गोद में मौजूद कक्षों में बौद्ध मंत्र गूँजते होंगे। अहर्निश व्याप्त मौन के बीच छैनी हथौड़ी की आवाज गूंज उठती होगी। चित्रकार अलग-अलग तरह के रंजकों को पहले इकट्ठा करते होंगे और बाद में उन्हें मिला कर मनमोहक रंग तैयार करते होंगे।

आश्चर्य की बात यह है कि हजारों वर्ष बीतने पर भी ये चित्र आज भी सुरक्षित है और हमें उस वक्त के आध्यात्म, कला और विज्ञान की उन्नति की गाथा सुना रहे हैं। बौद्ध साधना का ये पवित्र केंद्र आज भी संसार की भाग दौड़ से दूर घने जंगलों के बीच विशुद्ध प्राकृतिक वातावरण में मौजूद है। यहाँ जाने पर हमें भारत के उस पुराने वैभव के दर्शन होते हैं जिसकी बात अक्सर कही जाती है।

अजंता में मनुष्य द्वारा पहाड़ को काट कर निर्मित कुल 30 कक्ष या गुफायें हैं। इन गुफाओं में से कुछ में भगवान बुद्ध की ध्यान मुद्रा में मूर्तियाँ भी पत्थर को काट-छाँट कर बनायी गयी हैं। लेकिन यहाँ की विशिष्ट पहचान ये चित्र ही हैं जिनमें बड़ी खूबसूरती से मनुष्यगत भावों और भावनाओं को उकेरा गया है। कुछ चित्रों में त्रिआयामी तकनीक के भी दर्शन होते हैं। इसके कारण किसी भी दिशा में खड़े होकर देखने पर चित्र का पात्र हमारी ओर ही उन्मुख दिखायी देता है। इतने पुराने चित्रों में त्रिआयामी तकनीक के इस्तेमाल का ये संभवतः सबसे पुराना उदाहरण है। इन चित्रों में जिन रंगों का उपयोग किया गया है और जिस ढंग से इन्हें संरक्षित किया गया है वो तत्कालीन विज्ञान की उन्नति का प्रमाण है। कालांतर में राष्ट्र विदेशी आक्रांताओं से जूझने में व्यस्त हो गया। इस आध्यात्मिक कला केंद्र को मिलने वाला राजाश्रय समाप्त हो गया और धीरे-धीरे ये





गुफाएं जंगल के भीतर समाती चली गईं और एक समय ऐसा आया जब इन गुफाओं का वैभव बाहरी जगत से छुप गया। कुछ स्थानीय यायावरों और पशुपालकों को अवश्य इनकी उपस्थिति का आभास रहा होगा लेकिन वो इनके महत्व से अनभिज्ञ थे।

कहा जाता है कि 28 अप्रैल 1819 के दिन एक ब्रिटिश सेना अफसर 'जॉन स्मिथ' इस जंगल में शिकार कर रहे थे। इसी समय एक स्थानीय भेड़ चराने वाले बालक ने जॉन स्मिथ को गुफा नंबर 10 का दरवाजा दूर से दिखाया। उस समय सभी गुफाएं पूरी तरह से जंगलों, लताओं और झाड़-झंकाड़ से भरी हुई थीं और किसी भी गुफा के भीतर प्रवेश करना लगभग असंभव था। स्मिथ वहाँ से लौटकर एक स्थानीय गांव में गये और कुछ ग्रामीणों को फावड़े, कुल्हाड़ी आदि उपकरणों के साथ यहाँ लाये । कुछ झाड़ झंकाड़ साफ होने के बाद जॉन स्मिथ ने एक गुफा के भीतर प्रवेश किया और गुफा की छत और दीवारों पर उकेरी अद्‌भुत चित्रकारी को देखा।

धीरे-धीरे और भी लोगों को इन अद्‌भुत गुफाओं के बारे में जानकारी हुई और इन गुफाओं के प्रति अंग्रेज सरकारका ध्यान गया। वर्षों तक इन गुफाओं की साफ सफाई कराई जाती रही और धीरे-धीरे कुछ लोग इनको देखने आने लगे।

अंग्रेजों के समय में अजंता की गुफाओं का क्षेत्र हैदराबाद राज्य के अधीन आता था। 1920 में हैदराबाद में तत्कालीन निजाम मीर उस्मान अली खान ने इन गुफाओं के संरक्षण के कुछ प्रयास किये। गुफा स्थल तक सड़क का निर्माण हुआ। लेकिन आजादी के पहले तक इनके संरक्षण के पर्याप्त प्रयास नहीं हुये। आजादी के बाद राज्य सरकार ने इन गुफाओं को टूरिस्ट आकर्षण का केंद्र बनाने के लिये कदम उठाये। आज इस स्थान पर आधुनिक टूरिस्ट सेंटर, जरूरी प्रसाधन सुविधायें, पार्किंग,टूरिस्ट केंद्र से साइट तक बस सुविधा आदि संचालित हैं। 1983 में इन गुफाओं को वर्ल्ड हैरिटेज की सूचि मे शामिल किया। अजंता की सबसे महत्वपूर्ण गुफा क्रमांक 1,2 और 16,17 की रेप्लिका पहाड़ी के नीचे तैयार की जा रही है। ताकि पर्यटक रेप्लिका देख कर इस महान चित्रकारी का आनंद उठा सकें और मूल गुफाओं को नुकसान न हो।

अजंता पेंटिंग पर वैज्ञानिक अनुसंधान

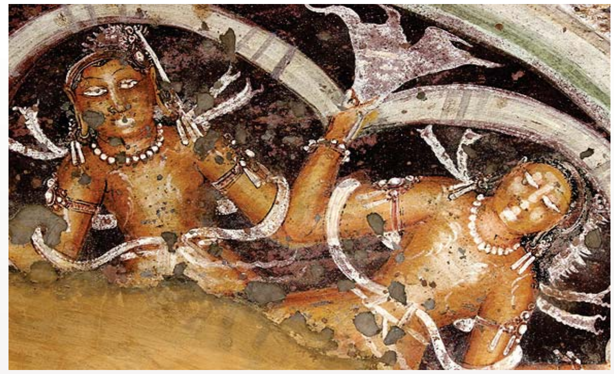
अजंता की म्यूरल पेंटिंग (वह पेंटिग जो सीधे दीवार के ऊपर बनायी गयी हो) भारत में बौद्ध मत के स्वर्ण काल का एक जीता जागता स्मारक है। इन चित्रों के ऊपर बहुत सारे वैज्ञानिक अनुसंधान यह जानने के लिये हुए हैं कि इन चित्रों को बनाने में कौन-कौन से रंगों और पदार्थों का उपयोग किया गया है और ये रंग कहाँ से और कैसे प्राप्त किये गये हैं। और ऐसा क्या है जो ये चित्र हजारों वर्षों से बचे हुये हैं। इन चित्रों के कालखंड के बारे में भी जानकारी जुटायी गयी है।

9th international confrence on NDT ofArt, jerusalem israel mein 25-30 may 2008 में एक रिसर्च पेपर प्रस्तुत किया गया था। इसका शीर्षक था –

MURAL PAITINGS OFAJANTA CAVES]PART II: NON DESTRUCTIVE INVESTIGATIONAND MICROANALYSIS ON EXECUTION TECHNIQUEAND STATE OF CONSERVATION -

यह रिसर्च गुफा क्रमांक 17 के चित्रों पर की गयी थी और इटली और भारत के वैज्ञानिकों का सम्मिलित प्रयास था। इस रिसर्च में नोन डिस्ट्रक्टिव इन्वेस्टिगेशन तकनीक का प्रयोग किया गया था जिससे गुफा के चित्रों पर कोई बुरा





प्रभाव नहीं पड़े। डिस्ट्रक्टिव टेक्निक्स में 9th international confrence on NDT ofArt, jerusalem israel mein 25-30 may 2008 में एक रिसर्च पेपर प्रस्तुत किया था, इसका शीर्षक था –

MURAL PAITINGS OFAJANTA CAVES]PART II NON DESTRUCTIVE INVESTIGATION AND MICROANALYSIS ON EXECUTION TECHNIQUE AND STATE OF CONSERVATION - का उपयोग किया गया था।

अल्ट्रा वायलट रेज ऑब्जरवेशन और स्पेक्ट्रो कलरमैट्रिक तकनीक का भी उपयोग किया गया था। इस रिसर्च कार्य से इन चित्रों को बनाने में इस्तेमाल हुए रंजक खपिगमेंट्स, और इनके बाइंडिंग मटेरियल के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की गई थी। इन प्रयोगों से जो सामान्य निष्कर्ष निकाले गए हैं वह इस प्रकार है

1. यह ज्ञात हुआ है कि दीवारों पर अलग-अलग आर्टिस्ट ने अलग-अलग समय के दौरान काम किया है।

2. कुछ रंग mixture of pigments, से बनाए गए हैं। उदाहरण के लिए पिंक कलर keolin or calcium carbonate red ochre or red lake को मिश्रित करके बनाया गया है।

पिंक, कलर में जरूरत के अनुसार ऑरपिमेन्ट ओर रेयलगर, भी मिलाया गया है।

कुछ micro distructive test, भी किए गए जिनका उद्देश्य चित्रों की प्रपरेटरी लेयर की पहचान करना और चित्रों के कंजर्वेशन के लिए बाद में ऊपर से लगाए गए केमिकल की जानकारी का पता लगाना था।

अजंता गुफा 17 में किए गए वैज्ञानिक विश्लेषणों से चाहे वे बिना नुकसान पहुँचाए non destructive, हों या destructive, यह पता चला कि पेंट की परतें सूखी प्लास्टर पर सीधे लगाई गई थी, जिसमें जैविक और अजैविक प्रकृति के रंगों pigments, का इस्तेमाल किया गया था। गुफा की अलग-अलग दीवारों पर इस्तेमाल किए गए रंगों और चित्रकला की शैली में कुछ अंतर देखने को मिले जिससे यह संकेत मिलता है कि वहाँ अलग-अलग कलाकारों ने और अलग अलग समय पर काम किया गया था।

पेंटिंग में इस्तेमाल हुए रंगों का सारांश इस प्रकार है कि लाल रंग के रूप में लाल गेरू red ochre, red lake, cinnabar, minium, का उपयोग किया गया था। पीले और नारंगी रंगों के लिए yellow ochre orpiment, तथा realgar, तथा एक पीले रंग की जैविक डाई का इस्तेमाल हुआ था।

सफेद रंगों के तौर पर kaolin, calcium carbonate shell white and lead white का उपयोग किया गया था। नीले हिस्सों को हमेशा lapis lazuli, और काले हिस्सों को एक जैविक काले रंग से रंगा गया था।

हरे हिस्सों को green earth, से या green earth & orpiment mixture और जैविक मूल के किसी अन्य रंग से रंगा गया था।

पेंट की परत में रंगों को kaolin – gypsum, के साथ मिलाया जाता था। इसमें इस्तेमाल होने वाला बाइंडर (जो रंगों को आपस में जोड़ता है) निश्चित रूप से जैविक प्रकृति का है और संभवतः यह कोई वनस्पति गोंद है।

चित्रों के आधार में दो प्रारंभिक परतें preparatory layers, मौजूद हैं। पहली परत मिट्टी, वनस्पति रेशों, गोबर और पिसी हुई स्थानीय चट्टान से बनी है। दूसरी परत कैल्शियम कार्बोनेट calsium carbonate, जिसका संभावित कार्य चित्रकारी की सतह को समतल और एक समान बनाना है ताकि उस पर रंगों की परत को बेहतर ढंग से चढ़ाया जा



सके। चित्रकारी की सतह विभिन्न प्रकार की अतिरिक्त परतों superimposed materials, से ढकी हुई है जैसे कि lamp black or charcol calcium oxlate oil natural resin and poly vinyl acitet.

भारतीय भित्ति चित्रों के इतिहास में कलाकारों की रंग-पट्टियों पर मुख्य रूप से मिट्टी के रंगों pigments, जैसे कि गेरू, हरी मिट्टी, वड्स और सफ़ेद मिट्टी का ही बोलबाला रहा है। इसी तरह उनकी रंग-पट्टियाँ भी कुछ सीमित रंगों तक ही सीमित थीं, जिनमें लाल, पीला, भूरा, हरा, काला और सफ़ेद रंग शामिल इनमें से अधिकतर रंग जिनका उपयोग किया गया वो स्थानीय तौर पर उपलब्ध थे। अजंता की पहाड़ियाँ ज्वालामुखी के लावा से बनी हैं। ज्वालामुखी के लावा में अनेक रंजक प्राकृतिक तौर पर मिलते हैं। इनको पहचानन, इनको शोधित करना और इनका उपयोग करना यह उस काल की विशेष वैज्ञानिक उपलब्धि थी। केओलिन यानि की चीनी मिट्टी, रेड ओकरे यानि लाल गेरू। आरपीमेंट चमकदार गोल्डन पीला रंग होता है जो ज्वालामुखी के लावा में मिलता है। रियलगर, लाल नारंगी पदार्थ होता है, इसे लाल संखिया भी कहा जाता है। यह भी आरपीमेंट के साथ ही मिलता है। यह दोनों ही रंग जहरीले होते हैं।

सिनेबार यानि सिंदूरी पत्थर यह भी ज्वालामुखी के ठंडे लावा से ही मिलता है।

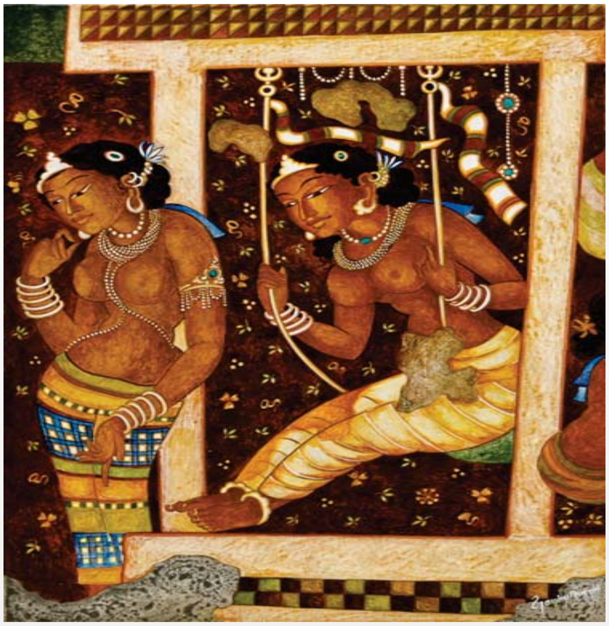
मिनियम लाल सीसा होता है। यह भूमि के भीतर पाया जाता है। पीला ओकरे यानि पीली गेरू मिट्टी। शेल व्हाइट, रंग सीपियों को पीस कर बनाया जाता था। लेड़ व्हाइट, को हिन्दी में सफेदा कहा जाता है। ये भी जमीन के भीतर ही पाया जाता है। ग्रीन अर्थ, अजंता की चट्टानों के बीच बीच में ही पाया जाता है। लैम्प ब्लैक वही काला रंग है जिसे हमारे यहाँ मातायें दिये के धुयें को एक जगह इकट्ठा कर के काजल के तौर पर बनाती थीं।

एक रंग रोचक है वो है नीला। यह लैपिस लेजुली है जो भारत में नहीं पाया जाता। इसकी खदानें उत्तर पूर्वी अफगानिस्तान में मौजूद थीं। इससे सिद्ध होता है कि उस समय में विदेशी व्यापार बहुत बढ़ा चढा था।

उस काल में उपयुक्त रंगों की खोज लगातार जारी रही। इसके लिए खदानें स्थापित की गईं होंगी और इन उत्पादों का व्यापार भी खूब फला-फूला होगा।ये रंग अक्सर चित्रकारों द्वारा स्वयं ही तैयार किए जाते थे, जिसके लिए वे अपने विशेष फ़ॉर्मूलों का इस्तेमाल करते थे। इन रंगों (पिगमेंट्स) का चुनाव बहुत सावधानी से किया जाता था, और फिर उन्हें पीसकर आपस में मिलाया जाता था।

गुफा चित्रों की खोज के समय से ही, संरक्षण पद्धतियों के विकास और तकनीकों में किए गए सुधारों ने अजंता के भित्ति-चित्रों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संरक्षण के किसी भी नए उपाय की योजना बनाते समय, चित्र-सतह पर पहले किए गए उपचारों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है; अतः भविष्य में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप की योजना बनाने के लिए, अतीत में किए गए कार्यों की जानकारी होना अनिवार्य है।

अजंता गुफाओं के ये बौद्ध चित्र भारतीय कला की अनुपम निधि हैं। ये चित्र बौद्ध जातक कथाओं को जीवंत करते हैं और दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से 5वीं शताब्दी ईस्वी तक के काल को दर्शाते हैं। इनके रंग, बनावट, सामग्री तथा निर्माण-काल पर वैज्ञानिक शोध ने पुरातात्विक, रासायनिक तथा भौतिक विश्लेषणों के माध्यम से खूब जानकारी दी है। पुरातत्व सर्वेक्षण भारत (ए.एस.आई), भारतीय राष्ट्रीय



संग्रहालय तथा इटली-भारत सहयोगी परियोजनाओं ने इन अध्ययनों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कालक्रम निर्धारण पर शोध मुख्य रूप से पुरातात्विक तथा शैलीगत साक्ष्यों पर आधारित है। अजंता दो चरणों में बनी है। प्रथम चरण (हीनयान काल) लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में गुफा 9 एवं 10 आदि में हुआ, जबकि द्वितीय चरण (महायान काल) 460-480 ईस्वी के बीच वाकाटक वंश के राजा हरिषेण के शासनकाल में पूरा हुआ। वाल्टर एम. स्पिंक, जैसे विद्वानों ने शैलियुक्त, अभिलेखीय तथा सिक्का-साक्ष्यों (विजयसेन व थिओडोसियस द्वितीय के सिक्के) के आधार पर द्वितीय चरण को मात्र 20 वर्षों का अल्पकालिक बताया। इससे पहले इसे चौथी से सातवीं शताब्दी तक फैला माना जाता था। इन शोधों ने इन चित्रों ऐतिहासिक संदर्भ-निर्धारण में क्रांति लाई।

सामग्री तथा बनावट पर वैज्ञानिक अध्ययन सबसे रोचक हैं। चित्र मिट्टी के प्लास्टर पर बने हैं। निचला प्लास्टर स्थानीय बेसाल्ट चट्टान से प्राप्त मिट्टी का है, जिसमें नदी की कछार (वाघुरा नदी) की मिट्टी, पौधों के तंतु, गोबर, भूसा तथा चूना (कैल्साइट) मिलाया गया।

एक और महत्वपूर्ण रिसर्च की गयी थी जो इस प्रकार है -

INTERNATIONAL JOURNAL OF SCIENTIFIC & ENGINEERING RESEARCH, VOLUME 3, ISSUE 10, OCTOBER-2012 Conservation and Restoration Research on 2nd BCE Murals ofAjanta M-Singh1* and B-R-Arbad2*

यह शोध प्राचीन चित्रों को सुरक्षित रखने की वैज्ञानिक प्रक्रिया conservation - restoration, पर केंद्रित था। शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार थे -

- अजंता गुफाएँ के 2nd BCE भित्ति-चित्रों का संरक्षण conservation, उनके क्षरण deterioration, के कारणों का वैज्ञानिक विश्लेषण।
- तथा उचित सफाई और पुनर्स्थापन तकनीकों restoration technique, का परीक्षण।

इस शोध का निष्कर्ष यह है कि अजंता गुफाओं के 2nd BCE भित्ति-चित्रों का संरक्षण अत्यंत जटिल है, क्योंकि पुराने वार्निश, चमगादड़ों की गंदगी और पर्यावरणीय बदलावों ने इन्हें गंभीर नुकसान पहुँचाया है। पारंपरिक सफाई विधियाँ पूरी तरह प्रभावी नहीं हैं और कई बार हानि भी करती हैं। माइक्रो-इमल्शन जैसी आधुनिक तकनीकें अपेक्षाकृत बेहतर परिणाम देती हैं, पर सीमाएँ भी हैं। अध्ययन बताता है कि संरक्षण के लिए वैज्ञानिक, नियंत्रित और न्यूनतम हस्तक्षेप वाला दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसमें रासायनिक विश्लेषण, पर्यावरण नियंत्रण और सावधानीपूर्वक उपचार का समन्वय हो।

अजंता गुफाओं के चित्रों की निर्माण प्रक्रिया, मटेरियल और संरक्षण के लिये अनेक शोध हो चुके हैं। ये शोध संरक्षण के लिए आधार हैं। नैनोटेक्नोलॉजी तथा प्लास्टर-रिप्लिकेशन से चित्रों को बचाया जा रहा है। अजंता चित्र प्राचीन भारतीय कला-विज्ञान का प्रमाण हैं, जिन्होंने एशियाई कला को गहराई से प्रभावित किया है। इन शोधों से हम न केवल अतीत समझते हैं, बल्कि सांस्कृतिक धरोहर को भविष्य के लिए सुरक्षित रखने की दिशा भी पाते हैं।

विज्ञान, विज्ञान कथा, व्यंग्य और कविता में समान रूप से लेखन। आपने बच्चों एवं प्रौढ़ शिक्षा के लिए कई पुस्तकें लिखी हैं। राज्य सहकारी सेवा से सेवानिवृत्त। दो कविता संग्रह - भाषा साँस लेती है, शब्द तुम कहो, एक उपन्यास - 'तंत्र कथा' और एक व्यंग्य संग्रह - व्यंग्य राग प्रकाशित। रजा पुरस्कार, अम्बिका प्रसाद दिव्य अलंकरण तथा मध्यप्रदेश लेखक संघ का पुष्कर सम्मान से सम्मानित। तंत्र कथा उपन्यास व्यापक रूप से चर्चित और लोकप्रिय हुई। इधर विज्ञान पत्रिकाओं में कई विज्ञान लेख लिखे हैं।

ksuresh6290@gmail.com

स्वास्थ्य

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस कुरूपता का विकार






डॉ. कृष्णा नन्द पाण्डेय

कभी-कभी बाजार-हॉट, रेलवे स्टेशन, सामाजिक-धार्मिक कार्यक्रमों, आदि में उपस्थित जनसमूह में कोई व्यक्ति ऐसा दिखाई दे जाता है जिसके चेहरे, हाथों, और अन्य अंगों में विभिन्न संख्या एवं आकार में कोमल गांठें दिखाई देती हैं। मेडिकल भाषा में यह स्थिति न्युरोफाइब्रोमैटोसिस (Neurofibromatosis - NF) के नाम से जानी जाती है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस आनुवंशिक विकारों का एक समूह है, जिसे हिंदी में 'तंत्रिका-सूत्रार्बुदता' या 'नसों में गांठ/ट्यूमर की बीमारी' कहा जा सकता है। यह एक दुर्लभ आनुवंशिक स्थिति है, जिसमें मस्तिष्क, रीढ़ की हड्डी और तंत्रिकाओं यानी नर्व्स पर कोमल, बिनाइन यानी सौम्य (गैर-कैंसरजनक) ट्युमर के रूप में गांठें विकसित हो जाती हैं। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस में त्वचा के नीचे और शरीर के अन्य भागों में स्थित तंत्रिका ऊतकों में कोमल, मांसल यानी फ्लेशी वृद्धि हो जाती है जिससे शरीर के प्रभावित अंग कुरूप हो उठता है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस की स्थिति में चेहरे हाथ, कोहनी पर पीठ या शरीर के किसी अन्य भाग पर छोटी-छोटी कोमल गांठें बन जाती हैं। मेडिकल भाषा में इन गांठों को न्युरोफाइब्रोमा कहा जाता है। न्युरोफाइब्रोमा शरीर के किसी भी अंग में मौजूद तंत्रिकाओं पर वृद्धि करते नॉनकैंसरस ट्युमर होते हैं। त्वचा में मौजूद तंत्रिकाओं पर विकसित इन गांठों को क्युटेनियस न्युरोफाइब्रोमा कहा जाता है, वहीं त्वचा के नीचे अथवा शरीर के अन्य हिस्सों, जैसे पेट, वक्ष यानी सीने और स्पाइन में गहरे विकसित ये गांठें सबक्युटेनियस न्युरोफाइब्रोमा के नाम से जानी जाती हैं। अधिकांश न्युरोफाइब्रोमा यानी कोमल गांठें आनुवांशिक विकारों के साथ पैदा होती हैं जिन्हें न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1 के नाम से जाना जाता है। यह स्थिति आगे चलकर बड़ी संख्या में नई न्युरोफाइब्रोमा और अन्य लक्षणों में बदल जाती है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस से ग्रस्त व्यक्ति के प्रभावित अंग पर न्युरोफाइब्रोमा की संख्या दो -चार से लेकर सैकड़ों या हजारों में हो सकती है। कुछ व्यक्तियों में विकसित सॉलिटेरी यानी एकल (अकेला) न्युरोफाइब्रोमा विकसित हो सकता है, भले ही वह व्यक्ति न्युरोफाइब्रोमैटोसिस से प्रभावित नहीं हो। उसे छिटपुट (विकीर्ण) अर्थात स्पोरैडिक न्युरोफाइब्रोमा कहा जाता है। इस प्रकार के न्युरोफाइब्रोमा के विकसित होने का कारण ज्ञात

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस आनुवंशिक स्थितियों का एक समूह है, जिसके अंतर्गत विकसित ट्यूमर रूपी गांठें मस्तिष्क, स्पाइनल कॉर्ड और उन तंत्रिकाओं को प्रभावित करती हैं जो मस्तिष्क और स्पाइनल कॉर्ड के बीच और शरीर के अन्य हिस्सों में संकेतों का आदान-प्रदान करती हैं। अधिकांश न्युरोफाइब्रोमा यानी ट्यूमरनुमा कोमल गांठें कैंसर जनक नहीं होतीं फिर भी कुछ ट्यूमर आगे चलकर कैंसर जनक हो सकते हैं।



नहीं है। अधिकांश स्पोरैडिक न्युरोफाइब्रोमा पीड़ादायक नहीं होते, और वह सर्जरी अथवा दवाई के बिना स्वतः ठीक हो जाते हैं।

क्या है न्युरोफाइब्रोमैटोसिस?

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस आनुवंशिक स्थितियों का एक समूह है, जिसके अंतर्गत विकसित ट्युमर रूपी गांठें मस्तिष्क, स्पाइनल कॉर्ड और उन तंत्रिकाओं को प्रभावित करती हैं जो मस्तिष्क और स्पाइनल कॉर्ड के बीच और शरीर के अन्य हिस्सों में संकेतों का आदान-प्रदान करती हैं। अधिकांश न्युरोफाइब्रोमा यानी ट्युमरनुमा कोमल गांठें कैंसर जनक नहीं होतीं फिर भी कुछ ट्युमर आगे चलकर कैंसरजनक हो सकते हैं।

क्यों उभरता है न्युरोफाइब्रोमैटोसिस?

शरीर में न्युरोफाइब्रोमैटोसिस विकसित होने के पीछे एक आनुवंशिक परिवर्तन यानी म्युटेशन की भूमिका होती है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1 और न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 2 के एक-एक जीन में तथा श्वानोमैटोटिस के दो जीनों में किसी एक जीन में म्युटेशन यानी उत्परिवर्तन उत्प्रेरित होने के परिणामस्वरूप शरीर के प्रोटीन कोशिकाओं की संख्या बढ़ाने के लिए आवश्यक संदेश प्राप्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। जिसके कारण शरीर में ट्युमर के रूप में न्युरोफाइब्रोमा का निर्माण होता है।

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस की लगभग आधी संख्या में घटनाएं वंशानुगत होती है यानी वह अपने पूर्वजों या माता-पिता से प्राप्त करते हैं। यदि माता-पिता में कोई भी एक व्यक्ति न्युरोफाइब्रोमैटोसिस से प्रभावित है, तो इस विकार के लिए जिम्मेदार केवल एक जीन उसकी संतान को इससे प्रभावित करने के लिए पर्याप्त होता है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस से प्रभावित माता-पिता की संतान को इस विकार से प्रभावित होने की 50% संभावना होती है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस से प्रभावित शेष 50% व्यक्तियों में यह विकार जीन में स्वतरू उत्परिवर्तन उत्प्रेरित (यानी म्युटेशन) होने के परिणामस्वरूप होता है। इस प्रकार, न्युरोफाइब्रो-मैटोसिस विकार ऐसे व्यक्ति में भी उभर सकता है जिसके परिवार में इसका पूर्व इतिहास न रहा हो।

विश्व में न्युरोफाइब्रोमैटोसिस की व्यापकता

विश्व में न्युरोफाइब्रोमैटोसिस के 96% मामले न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1 प्रकार के होते हैं। इसके अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष जन्मे 3000 नवजात शिशुओं में एक शिशु इससे प्रभावित होता है। न्युरोफाइब्रोमामैटोसिस के लगभग 3% मामले न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 2 प्रकार के होते हैं। जिसका तात्पर्य विश्व में प्रतिवर्ष जन्मे 33,000 नवजात शिशुओं में एक शिशु इससे प्रभावित होता है। मोटे तौर पर 40,000 व्यक्तियों में एक व्यक्ति टाइप 2 प्रकार के इस विकार से प्रभावित होता है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस के लगभग 1% मामले श्वानोमैटोसिस प्रकार के होते हैं।

न्युरोफाइब्रोमा के प्रकार

न्युरोफाइब्रोमा का वर्गीकरण शरीर में उसकी उपस्थिति के स्वरूप और उसके विकसित होने की गहराई के आधार पर किया जाता है। न्युरोफाइब्रोमा के लक्षण और ट्युमर यानी उसकी गांठों का उभरना कमोवेश उसके प्रकार, उसकी स्थिति और उसके आकार के आधार पर निर्भर करता है।

त्वचीय यानी डर्मल न्युरोफाइब्रोमा त्वचा के नीचे छोटी-छोटी गांठों यानी (लम्प्स) के रूप में महसूस की जा सकती हैं। आमतौर पर इसके बनने की शुरुआत यौवन के आरंभ होने के बाद होती है की उपस्थिति सामान्य रूप से पाई जाती है। और यह है। यह त्वचा पर अथवा त्वचा के ठीक नीचे विभिन्न संख्या और आकार में रबड़ की तरह लचीली, कृमृ गांठों के रूप में विकसित न्युरोफाइब्रोमैटोसिस

टाइप 1 से संबंधित होता है। प्रभावित व्यक्ति की आयु बढ़ने के साथ इनकी संख्या बढ़ती जाती है। इन गांठों से हल्की खारिश के अलावा कोई महत्वपूर्ण लक्षण नहीं देखे जाते। हालांकि, कुछ न्युरोफाइब्रोमा आकार में बहुत बड़े होकर विशेषतया चेहरे जैसे स्थानों के सौंदर्य को प्रभावित जरूर करते हैं।

विस्तारित यानी डिफ्यूज न्युरोफाइब्रोमा भी त्वचा पर ही विकसित होते हैं, परंतु त्वचा के नीचे कई सतह में गहरे फैल जाते हैं। सिर, शरीर और अन्य भागों में गहरे रंग की उभरी गांठें स्पर्श करने पर मुलायम होती हैं। अतःपेशीय यानी इंट्रामस्कुलर न्युरोफाइब्रोमा पेशियों की छोटी छोटी तंत्रिकाओं पर विकसित गांठें होती हैं।

मेरुदंडीय यानी स्पाइनल न्युरोफाइब्रोमा रीढ़ की हड्डी में मौजूद तंत्रिकाओं पर विकसित होती हैं। बच्चों की तुलना में वयस्क इससे अधिक प्रभावित होते हैं। इन गांठों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाने से तंत्रिकाओं पर दबाव पढ़ने के कारण पीड़ा, शरीर में अकड़न या सुन्न होने अथवा कमजोरी जैसी समस्याएं उभर सकती हैं।



मेरुदंडीय यानी स्पाइनल न्युरोफाइब्रोमा रीढ़ की हड्डी में मौजूद तंत्रिकाओं पर विकसित होती हैं। बच्चों की तुलना में वयस्क इससे अधिक प्रभावित होते हैं। इन गांठों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाने से तंत्रिकाओं पर दबाव पढ़ने के कारण पीड़ा, शरीर में अकड़न या सुन्न होने अथवा कमजोरी जैसी समस्याएं उभर सकती हैं।

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस के प्रकार

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस कोई एकल विकार नहीं है। मुख्यतया यह दो प्रकार का होता है : न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1 और न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 2। इनके अलावा तंत्रिका कोशिकाओं की श्वान कोशिकाओं (Schwann cells) के प्रभावित होने से श्वानोमैटोसिस की स्थिति भी देखी जाती है।

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1

यद्यपि यह दुर्लभ प्रकार का होते हुए भी, सबसे सामान्य प्रकार का न्युरोफाइब्रोमैटोसिस है। न्युरोफाइब्रो-मैटोसिस टाइप 1 एक ऐसा जीन है जो न्युरोफाइब्रोमिन नामक प्रोटीन का उत्पादन नियंत्रित करता है। यह प्रोटीन ट्युमर यानी अर्बुद के निर्माण को रोकता है। त्वचा पर धीरे-धीरे हल्के भूरे धब्बे उभरते हैं, त्वचा और नसों यानी तंत्रिकाओं पर छोटी-छोटी मुलायम गांठें यानी ट्युमर बन जाती हैं। इसकी पहचान होने में कई वर्ष लग सकते हैं। परंतु इस प्रकार के न्युरोफाइब्रोमैटोसिस की पहचान शुरुआती बाल्यकाल में हो जाती है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1 से प्रभावित व्यक्तियों की संभावित आयु औसत होती है। बच्चों और वयस्कों में इसके लक्षण भिन्न होते हुए भी इससे संबंधित स्वास्थ्य समस्याएं उनके जीवन भर में कभी भी उभर सकती हैं।

इसके लक्षणों में सम्मिलित हैं

त्वचा पर समतल, हल्के भूरे धब्बे रू न्यूरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1 का यह अत्यंत सामान्य लक्षण है। इससे प्रभावित व्यक्ति में कम से कम आधा दर्जन ऐसे धब्बे देखे जाते हैं जिनका आकार वयस्कों में 1.5 सेंटीमीटर और बच्चों में लगभग आधा सेंटीमीटर होता है। नवजात शिशु के शरीर पर ये धब्बे प्रायः नहीं पाये जाते, परंतु ये धब्बे आयु बढ़ाने के साथ शरीर के कई अन्य भागों में फैल सकते हैं। ये धब्बे हानिकारक नहीं होते परंतु प्रभावित व्यक्ति में न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1 जीन में एक परिवर्तन का संकेत हो सकता है।

बगल (कांख) अथवा कमर के निचले हिस्से में चकत्ते : आमतौर पर इसकी शुरुआत 5 वर्ष की आयु तक हो जाती है। ये चकत्ते त्वचा पर हल्के भूरे धब्बे के ही समान परंतु आकार में छोटे होते हैं।

मटर के आकार का मुलायम न्युरोफाइब्रोमा : इसकी उपस्थिति सामान्य रूप से त्वचा पर और त्वचा के नीचे, अथवा पूरे शरीर भर में किसी भी तंत्रिका पर हो सकती है। यद्यपि, कुछ त्वचीय न्युरोफाइब्रोमा बाल्यकाल में विकसित हो सकते हैं, परंतु इनकी अधिकांश उपस्थिति टीनएज आयु के बाद अथवा बहुधा आयु बढ़ने के साथ विकसित हो सकती है।

शरीर के सीने, पीठ, कोहनी, घुटने, श्रेणि (पेल्विस) जैसे भागों की त्वचा पर मध्यम आकार में भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। ऐसे धब्बे जन्म के समय भी उपस्थित हो सकते हैं अथवा शिशुकाल में भी उभर सकते हैं। 10 से 15 वर्ष की आयु में त्वचा पर विभिन्न आकृति और आकार में मांस के रंग की वृद्धि यानी न्युरोफाइब्रोमा उभरने की शुरुआत होती है। ये आकृतियां 10 अथवा हजारों की संख्या में में उभर सकती हैं। त्वचा के नीचे उभरी गांठें अथवा न्युरोफाइब्रोमा के प्रभाव में हड्डियों का आकार अधिक बढ़ने प्रभावित कुछ व्यक्तियों के शारीरिक ढांचे में विरूपता पैदा हो सकती है।



प्लेक्सीफॉर्म न्युरोफाइब्रोमा : मानव शरीर में तंत्रिकाओं यानी नर्व्स का एक जटिल नेटवर्क या गुच्छा होता है जो रीढ़ की हड्डी से निकल कर आपस में जोड़ते हुए शरीर के विभिन्न अंगों जैसे हाथ, पैर तक फैल कर मांसपेशियों और त्वचा को नियंत्रित करते हैं। इन्हें तंत्रिका जालक, नसों का जाल या नर्व प्लेक्सस के नाम से जाना जाता है। प्लेक्सीफॉर्म न्युरोफाइब्रोमा शरीर के विभिन्न अंगों में फैले तंत्रिका जालक पर विकसित छोटी-बड़ी गांठें होती हैं जिससे शरीर का कोई भी अंग प्रभावित हो सकता है। हालांकि, यह अत्यंत दुर्लभ प्रकार का ट्युमर होता है। परंतु इनसे पेशी और कनेक्टिव टिश्यू (संयोजी ऊतक) जैसे अन्य प्रकार के ऊतकों के प्रभावित होने की संभावना होती है। तंत्रिका जालक पर विकसित न्युरोफाइब्रोमा यानी गांठें त्वचा और उसके नीचे स्थित ऊतकों पर बड़े आकार में विकसित होकर कुरूपता की स्थिति पैदा कर सकती हैं। ये ट्युमर कभी-कभी सिर और चेहरे को भी प्रभावित करते हैं। प्लेक्सीफॉर्म प्रकार की गांठें (न्युरोफाइब्रोमा) न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 1 से संबंधित होता है जो जन्म के समय भी पाया जा सकता है। हालांकि, शिशुओं में इनका निदान बहुत कठिन है।

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 2

आमतौर पर कान की नसों पर बनने वाले ट्युमर न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 2 प्रकार के होते हैं। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस टाइप 2 मर्लिन नामक एक जीन है जो एक अन्य न्युरोफाइब्रोमिन प्रोटीन के उत्पादन को नियंत्रित करता है। यह प्रोटीन भी ट्युमर के निर्माण को संदमित करता यानी रोकता है। इस स्थिति में प्रभावित व्यक्ति में सुनने और देखने की क्षमता में कमी, प्रभावित अंग का सुन्न होना, तथा शारीरिक संतुलन की समस्या पैदा हो सकती है।

श्वानोमैटोसिस

श्वान कोशिकाएं (Schwann cells) परिधीय तंत्रिका फाइबर्स को चारों ओर से ढकती हैं। श्वानोमैटोटिस के विकसित होने के लिए SMARCB अथवा LZTR1 नामक दो जीन जिम्मेदार होते हैं। श्वानोमैटोसिस प्रकार की गांठें श्वान कोशिकाओं तथा परिधीय तंत्रिकाओं को सपोर्ट करने वाली अन्य कोशिकाओं की वृद्धि होती है। तंत्रिका कोशिकाओं के एग्जॉन के चारों ओर स्थित श्वान कोशिकाएं माइलिन शीथ यानी आवरण बनाती हैं जो तंत्रिका आवेग में तेजी लाने का काम करती हैं। जिससे संदेशों का आदान-प्रदान तीव्रता से हो सके। परिधीय तंत्रिका तंत्र यानी पेरीफेरल नर्व्स सिर, गर्दन और पूरे शरीर में फैला हुआ नसों का एक जाल है। यह केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी) से संदेशों को लाता और ले जाता है।

न्यूरोफाइब्रोमैटोसिस के लक्षण

परिधीय (पेरीफेरल) न्युरोफाइब्रोमैटोसिस से प्रभावित लगभग एक तिहाई लोगों में किसी प्रकार का लक्षण नहीं देखा जाता। इस विकार की सबसे पहले पहचान चिकित्सक द्वारा की जाने वाली नियमित जांच के दौरान त्वचा के नीचे तंत्रिकाओं के समीप गांठें उभरने के साथ की जाती है। इस विकार से प्रभावित दूसरी तिहाई लोगों में इसकी पहचान उस दौरान होती है, जब व्यक्ति कॉस्मेटिक सौन्दर्य से संबंधित समस्या के कारण चिकित्सक से परामर्श के लिए जाता है। शेष तिहाई व्यक्तियों में इस विकार की पहचान स्पाइनल कॉर्ड अथवा तंत्रिकाओं यानी नर्व्स पर दबाव (कंप्रेशन) के कारण उत्पन्न कमजोरी जैसी तंत्रिका संबंधी समस्याओं के दौरान हो पाती है। आमतौर पर शरीर के सीने, पीठ, कोहनी, घुटने, श्रोणि (पेल्विस) जैसे भागों की त्वचा पर मध्यम आकार में भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। ऐसे धब्बे जन्म के समय भी उपस्थित हो सकते हैं अथवा शिशुकाल में भी उभर सकते हैं।

10 से 15 वर्ष की आयु में त्वचा पर विभिन्न आकृति और आकार में मांस के रंग की वृद्धि यानी न्युरोफाइब्रोमा उभरने की शुरुआत होती है। ये आकृतियां 10 अथवा हजारों की संख्या में में उभर सकती हैं। त्वचा के नीचे उभरी गांठों अथवा न्युरोफाइब्रोमा के प्रभाव में हड्डियों का आकार अधिक बढ़ने प्रभावित कुछ व्यक्तियों के शारीरिक ढांचे में विरूपता पैदा हो सकती है, जैसे की स्पाइन में असामान्य रूप से घुमाव (काइफोस्कोलियोसिस) पैदा होना, पसली में विरुपता, बांह और टांग की हड्डियां बढ़ना, खोपड़ी की हड्डी की बनावट में विरूपता, आंखें असामान्य रूप से बाहर निकलना, आदि।

शरीर की कोई भी तंत्रिका न्युरोफाइब्रोमा से प्रभावित हो सकती है, पर आमतौर पर यह स्थिति स्पाइनल नर्व की मूल यानी शुरुआत पर विकसित होती है। बहुधा उनसे बहुत कम अथवा कोई भी समस्या नहीं उभरती है। परंतु उसके कारण स्पाइनल कॉर्ड पर दबाव पड़ने की स्थिति में लकवा ग्रस्त होने अथवा शरीर के विभिन्न भागों में संवेदना (सेंसेशन) बाधित होने की समस्या पैदा हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि स्पाइनल कार्ड का कौन सा हिस्सा प्रभावित हुआ है। यदि न्युरोफाइब्रोमा से परिधीय तांत्रिकाओं पर दबाव पड़ता है तब तंत्रिकाएं सामान्य रूप से कार्य करना बंद कर सकती हैं। जिससे दर्द और अथवा कमजोरी की स्थिति पैदा हो सकती है। सिर की तंत्रिकाओं पर न्युरोफाइब्रोमा उभरते के कारण अंधापन, चक्कर आना बहरापन, कानों में शोर और शरीर के विभिन्न कार्यों के लिए आवश्यक समन्वयन बाधित होने जैसी गंभीर स्थितियां पैदा हो सकती हैं।

प्रायः न्युरोफाइब्रोमैटोसिस की स्थिति बढ़ती जाती है। न्युरोफाइब्रोमा की संख्या जितनी अधिक बढ़ेगी, तंत्रिका संबंधी समस्याएं उतनी ही बढ़ती जाएंगी। जिन व्यक्तियों के शरीर के मध्य में न्युरोफाइब्रोमैटोसिस विकसित होता है उनमें शरीर के दोनों तरफ ऑडिटरी नर्व्स में ट्युमर विकसित होने का खतरा अधिक होता है। बीस वर्ष से कम आयु में यह ट्युमर सुनने की क्षमता प्रभावित कर सकता है, और कभी-कभी चक्कर आने जैसी स्थिति भी पैदा हो सकती है। ऐसे व्यक्तियों में ग्लायोमा अथवा मेनिंजाइटिस विकसित होने का भी खतरा हो सकता है और कुछ में स्थाई रूप से मोतियाबिंद यानी कैटरेक्ट विकसित हो सकता है। वंशानुगत होने के कारण यह विकार परिवार के सदस्यों को भी प्रभावित कर सकता है।

न्युरोफाइब्रोमा का निदान

त्वचा पर उभरने वाले न्युरोफाइब्रोमा की गांठों की पहचान शारीरिक जांच के दौरान आसानी से की जा सकती है। इस बात की पुष्टि करने के लिए कि यह न्युरोफाइब्रोमैटोसिस के कारण है, चिकित्सा विशेषज्ञ अन्य लक्षणों पर नजर रखते हुए कुछ और परीक्षणों की सिफारिश कर सकते हैं जिनमें आनुवंशिक परीक्षण भी शामिल है।

त्वचा के अलावा शरीर के अन्य अंगों में गहरे विकसित न्युरोफाइब्रोमा की पहचान अधिक कठिन हो सकती है। वे बिना किसी लक्षण के लंबी अवधि से वृद्धि कर सकती हैं तथा अन्य ट्युमर के समान प्रतीत हो सकती हैं। ऐसे न्युरोफाइब्रोमा का निदान मैग्नेटिक रिजोनेंस इमेजिंग (एम आर आई), कंप्यूटराइज्ड टोमोग्राफी (सीटी) स्कैन, और इलेक्ट्रोमायोग्राफी (जिसमें तंत्रिकाओं के वैद्युत पथ की माप की जाती है) जैसी परीक्षण विधियों के माध्यम से किया जा सकता है। न्युरोफाइब्रोमा की गांठों में कैंसरजनक परिवर्तनों की पुष्टि करने के लिए पॉज़िट्रॉन एमिशन टोमोग्राफी (पी ई टी) स्कैन और एक बायोप्सी यानी जीव ऊति परीक्षा जैसे परीक्षणों की आवश्यकता पड़ सकती है।

न्युरोफाइब्रोमैटोसिस की जटिलताएं

इसके कारण उभरने वाली प्रमुख जटिलताओं में शामिल हैं –

- न्युरोफाइब्रोमा का रंग, आकार और उसकी बनावट में बदलाव हो सकता है अथवा उनकी संख्या निरंतर बढ़ती जा सकती है।
- सुनने की क्षमता में गिरावट यानी बहरापन।
- दिखाई देने में कठिनाई, मोतियाबिंद विकसित होने का खतरा।
- शरीर के प्रभावित क्षेत्र में क्रॉनिक दर्द उभर सकता है, अथवा सुन्न होने और कमजोरी की स्थिति उभर सकती है।
- सीखने में कठिनाई और व्यवहार से संबंधित समस्याएं
- हृदय वाहिकीय यानी कार्डियोवैस्कुलर समस्याएं (हाइपरटेंशन, जन्मजात हृदय रोग)।
- त्वचा पर उभरी कुरूपता के कारण आत्म सम्मान में गिरावट।
- कैंसर विकसित होने की संभावना
- बहुत ही कम मामलों में न्युरोफाइब्रोमैटोसिस ट्यूमर कैंसर में विकसित हो सकता है।

- न्युरोफाइब्रोमा की गांठों से उत्पन्न शारीरिक कुरूपता के चलते व्यक्ति का घर से बाहर निकलना सीमित हो जाता है, साथ ही वह सामाजिक भेदभाव का शिकार हो सकता है।

न्युरोफाइब्रोमा का इलाज

न्युरोफाइब्रोमाइटोसिस के विकसित होने को रोकने अथवा उसके उपचार का कोई ज्ञात इलाज नहीं है। हालांकि, एक-एक न्युरोफाइब्रोमा को सर्जरी के माध्यम से अलग किया जा सकता है। रैडिएशन थेरेपी से भी उसके आकार को कम किया जा सकता है। किसी तंत्रिका के समीप विकसित होने की स्थिति में सर्जरी के माध्यम से हटाने के दौरान उसे तंत्रिका को भी अलग करना आवश्यक हो सकता है। वर्तमान में ऐसी कोई दवाई नहीं है जिनसे न्युरोफाइब्रोमा की गांठें सिकुड़ सकें अथवा समाप्त हो सकें। न्यूरोफाइब्रोमा की गांठे बड़ी तेजी से विकसित होने और वृद्धि करने, अथवा उसके कैंसर में परिवर्तित होने की आशंका को देखते हुए चिकित्सा विशेषज्ञ परामर्श में उन्हें केवल सर्जरी (शल्य क्रिया) द्वारा निकालना ही एकमात्र विकल्प है। न्युरोफाइब्रोमा की गांठों के स्थान, उनके आकर तथा उनके सन्निकट तंत्रिकाओं को देखते हुए सर्जरी के माध्यम से उनको निकालना अत्यधिक जटिल हो सकता है। न्यूरो फाइब्रोमा की गठन को सर्जरी के माध्यम से निकलने में शल्य चिकित्सकों के समक्ष गंभीर चुनौतियां होती हैं। तंत्रिका से न्युरोफाइब्रोमा को अलग करना अत्यंत कठिन हो सकता है। अतः, परिधीय तंत्रिका शल्यक्रिया (पेरीफेरल नर्व सर्जरी) में दक्ष शल्यचिकित्सक से परामर्श करना उपयुक्त होता है। पीड़ित व्यक्ति के विशिष्ट लक्षणों के आधार पर चिकित्सक सर्जरी के खतरों और संभावित फायदों की समीक्षा करते हुए रोगी को सर्जरी का निर्णय लेने में सहायक हो सकते हैं। हालांकि, बच्चों में इसकी शुरुआत होने पर चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा कुछ मुखीय



दवाइयों (ओरल मेडिसिंस) के सेवन की सलाह दी जा सकती है। शल्य क्रिया द्वारा फ्लेक्सीफॉर्म न्युरोफाइब्रोमा को अलग नहीं किया जा सकता।

कभी-कभी चेहरे और सर जैसे महत्वपूर्ण अंगों पर विकसित न्यूरोफाइब्रोमा की गांठों को अलग करने के लिए वहां की त्वचा के बड़े भाग को अलग करने की जरूरत पड़ती है। इस स्थिति में न्युरोफाइब्रोमा की सर्जरी से उत्पन्न चेहरे की कुरूपता दक्ष और अनुभवी प्लास्टिक सजन द्वारा स्किन फ्लैप्स, स्किन ग्राफ्ट्स और स्किन एक्सपैंशन जैसी विभिन्न तकनीकों के माध्यम से दूर की जा सकती है।

न्यूरोफाइब्रोमैटोसिस एक दीर्घकालिक यानी क्रॉनिक बीमारी है परंतु सही इलाज और निगरानी से व्यक्ति सामान्य जीवन जी सकता है। न्युरोफाइब्रोमैटोसिस वंशानुगत होने के कारण, इससे प्रभावित व्यक्ति दम्पति को संतान उत्पत्ति पर विचार करने से पहले जेनेटिक काउंसलिंग (आनुवंशिक परामर्श) की सिफारिश की जाती है। इस विकार से रहित किसी दंपति के किसी बच्चे में ये लक्षण उभरते हों तो उसके दूसरे बच्चों में इस विकार के उत्पन्न होने का खतरा बहुत कम होता है।

डॉ. कृष्णानन्द पाण्डेय ने प्राणी विज्ञान में स्नातकोत्तर तथा 'मछलियों की एनाटॉमी' विषय पर शोध व क्टरेट (डी.फिल.) की उपाधि प्राप्त की। भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय द्वारा प्रायोजित 'मैन ऐंड बायोस्फीयर' शोध परियोजना में वरिष्ठ रिसर्च फेलो के रूप में कार्य किया। डॉ. पाण्डेय ने आईसीएमआर में सेवाएं तथा आईसीएम आर पत्रिका का संपादन किया। 'मलेरिया अनुसन्धान से रोग समाधान', 'डेंगी एवं चिकुनगुनिया : रोग प्रसार एवं रोकथाम'; 'प्रदूषण, जीवन शैली एवं प्रजनन स्वास्थ्य'; 'व्यावसायिक रोग और निवारण' तथा 'आई जे एम आर-गांधी और स्वास्थ्य' जैसी पुस्तकों का सम्पादन तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं 250 से ज्यादा लोकप्रिय लेख प्रकाशित हैं। विज्ञान पुरस्कार, नई दिल्ली स्थित 'केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद' द्वारा 'प्रशस्ति पत्र', 'राष्ट्रीय हिन्दी सेवी सहस्राब्दी सम्मान' तथा 'शताब्दी सम्मान' से सम्मानित।

knpandey@gmail.com

टी.बी.

एक अनदेखी खांसी से जीवन का संघर्ष, जागरुकता ही बचाव



नेहल शाह

'आराम ज़िन्दगी की कुंजी, इससे न तपेदिक होती है...'

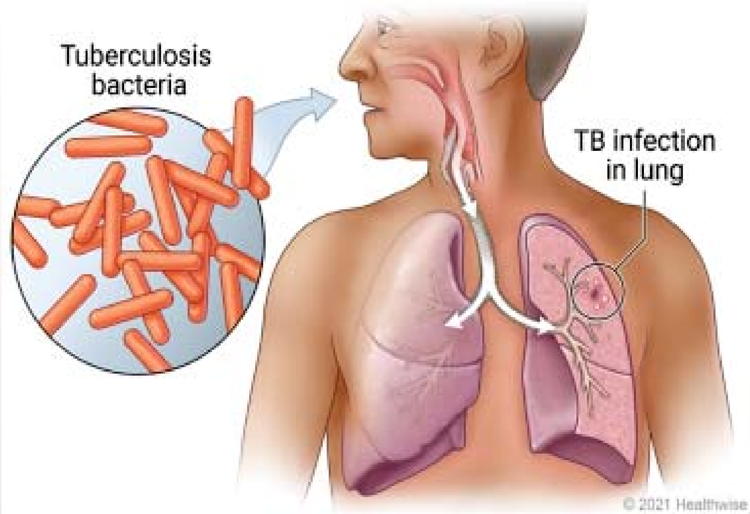
गोपालदास व्यास की ये पंक्तियाँ हमने अक्सर हास्य रस के उदाहरण के रूप में पढ़ीं और सुनी हैं। उस समय शायद ही कभी यह सोचा होगा कि कविता का यह अंश, जो हमें हल्का-फुल्का और व्यंग्यपूर्ण लगता है, दरअसल एक गहरी सच्चाई को भी छूता है। मेरे लिए भी तपेदिक या टीबी का पहला परिचय इन्हीं पंक्तियों के माध्यम से हुआ था। उस समय यह केवल एक शब्द था, कविता का हिस्सा। लेकिन धीरे-धीरे जीवन के निजी अनुभवों ने इस शब्द को एक वास्तविकता में बदल दिया। और आज, अस्पताल में कार्य करते हुए, टीबी से लगभग रोज़ किसी न किसी रूप में सामना होता है- कभी एक मरीज के रूप में, कभी एक संघर्ष की कहानी के रूप में, और कभी एक ऐसी चेतावनी के रूप में, जिसे समय रहते समझना बहुत जरूरी है।

यही कारण है कि अब टीबी मेरे लिए केवल एक बीमारी नहीं, बल्कि जागरूकता, संवेदनशीलता और समय पर हस्तक्षेप की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन चुकी है और शायद इसी अनुभव को आप सभी के साथ साझा करना आज आवश्यक है। ऐसे अनुभव आम लोगों तक पहुंचे और कोई एक व्यक्ति भी समय रहते सतर्क हो जाए तो एक जीवन बचाया जा सकता है। ऐसी ही एक घटना मैं आपसे साझा करना चाहती हूं। लगभग 25 वर्ष की एक युवा मां, जिसे अपने दूसरे बच्चे के जन्म के कुछ समय बाद ही खांसी शुरू हो गई। शुरुआत में यह एक सामान्य खांसी जैसी लगी, लेकिन धीरे-धीरे यह बढ़ती गई। शुरू के चिकित्सीय परामर्श पर उसने, दवाइयां लीं, लेकिन राहत नहीं मिली। महिला आर्थिक रूप से कमजोर परिवार से थी। बार-बार इलाज कराना संभव नहीं था। इसलिए दवाइयाँ और परामर्श दोनों बंद हो गए लेकिन खांसी बढ़ती गई-

वजन लगातार कम होने लगा...

भूख लगभग खत्म हो गई...

हर शाम बुखार आने लगा, कमजोरी बढ़ने लगी...



आज भी टीबी दुनिया की सबसे पुरानी और खतरनाक संक्रामक बीमारियों में से एक है, लेकिन अच्छी बात यह है कि यह पूरी तरह से ठीक होने वाली बीमारी है। प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो की हालिया रिपोर्ट के अनुसार भारत में तपेदिक (टीबी) के नियंत्रण की दिशा में पिछले कुछ वर्षों में उल्लेखनीय प्रगति देखने को मिली है। वर्ष 2015 से 2024 के बीच हर वर्ष सामने आने वाले नए टीबी मामलों में लगभग 21% की कमी आई है, जबकि इसी अवधि में टीबी से होने वाली मृत्यु दर में 28% की गिरावट दर्ज की गई है। टीबी मुक्त भारत अभियान के तहत 7 दिसंबर 2024 से अब तक 20 करोड़ से अधिक संवेदनशील आबादी की जांच की जा चुकी है और 28 लाख से अधिक मरीजों की पहचान की गई है, जिससे समय पर उपचार संभव हो पाया है। इसके साथ ही, वर्ष 2024 में 46,118 से अधिक ग्राम पंचायतों को टीबी मुक्त घोषित किया जाना इस दिशा में सामुदायिक प्रयासों की बड़ी सफलता को दर्शाता है। दवा-प्रतिरोधी टीबी के उपचार के लिए BPaLM (बेडाक्विलिन, प्रेटोमैनिड, लाइनज़ोलिड और मोक्सीफ्लॉक्सासिन) जैसे नए, छोटे और अधिक प्रभावी उपचार की शुरुआत की गई है, जिससे इलाज की अवधि और जटिलता दोनों में कमी आई है। इसके अलावा, भारत का एआई आधारित टीबी कार्यक्रम खांसी की स्क्रीनिंग, एक्स-रे की व्याख्या और उच्च जोखिम वाले मरीजों की पहचान के लिए आधुनिक तकनीकों का उपयोग कर रहा है, जिससे रोग की शीघ्र पहचान और बेहतर प्रबंधन संभव हो रहा है। यह एक सकारात्मक संकेत है कि यदि प्रयास जारी रहे, तो टीबी मुक्त भारत का सपना साकार हो सकता है।

खांसते समय सीने में असहनीय दर्द होने लगा, दिनचर्या के काम भी छूट गए और हालत इतनी बिगड़ गई कि उसने बिस्तर पकड़ लिया। फिर एक रात सांस लेने में इतनी तकलीफ हुई कि उसे तुरंत अस्पताल के इमरजेंसी वार्ड में भर्ती करना पड़ा। अस्पताल में जांच करने पर पता चला कि उसके दोनों फेफड़ों में पानी भर चुका था। सीटी स्कैन में एक फेफड़ा गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त पाया गया और अन्य संबन्धित जाँचों में टीबी की पुष्टि की गई। तुरंत इलाज शुरू किया गया, एक फेफड़े में पानी निकालने के लिए नली डाली गई। टीबी की दवाइयाँ शुरू की गईं। इस बात को अधिक समय नहीं हुआ है वह महिला अभी इलाज करा रही है हालांकि उसके लिए यह एक लंबी, कठिन प्रक्रिया बन चुका है। आपको यह एक काल्पनिक कहानी लग सकती है, लेकिन यह हकीकत है। और यह सिर्फ एक मामला नहीं है- ऐसे कई मरीज हर दिन अस्पतालों में आते हैं।

इस बात का ज़िक्र इसलिए भी जरूरी है क्योंकि हाल ही में पूरे विश्व ने, 24 मार्च को, विश्व टीबी दिवस मनाया। यह दिन हर साल हमें यह याद दिलाता है कि तपेदिक (टीबी) आज भी हमारे समाज में एक गंभीर चुनौती बनी हुई है- और इस बीमारी के प्रति जागरूकता बढ़ाना और इसे जड़ से खत्म करने के लिए हमें सामूहिक प्रयास करने हैं। यह दिन 1882 में महान वैज्ञानिक डॉ. रॉबर्ट कोच द्वारा टीबी के जीवाणु की खोज की याद में मनाया जाता है। उनकी इस खोज ने दुनिया को इस बीमारी की पहचान और इलाज का रास्ता दिखाया।

टीबी क्या है?

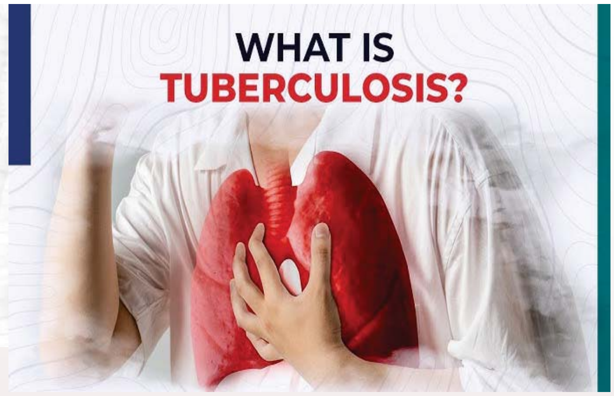
तपेदिक (टीबी) एक संक्रामक बीमारी है, जो माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस नामक बैक्टीरिया के कारण होती है। यह मुख्य रूप से फेफड़ों को प्रभावित करती है, लेकिन कई बार यह शरीर के अन्य अंगों जैसे मस्तिष्क, किडनी, रीढ़ या हड्डियों में भी फैल सकती है जिसे फेफड़ों के बाहर की टीबी कहते हैं। टीबी के बारे में यह जानना बहुत जरूरी है कि दो प्रकार की हो सकती है-

- **सक्रिय टीबी** : इसमें मरीज में लक्षण दिखाई देते हैं और यह दूसरों को संक्रमित कर सकता है।

- **निष्क्रिय या लैटेंट टीबी :** इसमें व्यक्ति संक्रमित होता है, लेकिन बीमार नहीं दिखता और दूसरों को संक्रमण नहीं फैलाता। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, दुनिया के कई हिस्सों में लगभग हर 7 में से 1 व्यक्ति के शरीर में टीबी का बैक्टीरिया मौजूद होता है, लेकिन वह बीमार नहीं होता। किन्तु यदि किसी कारण से उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाए, तो उनमें से लगभग 10% लोगों में जीवन के किसी चरण में सक्रिय टीबी विकसित हो सकती है।
- **दवा-प्रतिरोधी टीबी या मल्टीड्रग रेसिस्टेंट टीबी** (MDR-TB)- यह टीबी का एक गंभीर रूप है, जिसमें टीबी के बैक्टीरिया सामान्य रूप से दी जाने वाली प्रमुख दवाओं (जैसे Isoniazid और Rifampicin) के प्रति असरहीन हो जाते हैं।

टीबी को मुख्यतः उसके प्रभावित अंग (site of infection) के आधार पर दो प्रमुख प्रकारों में बांटा जाता है- पल्मोनरी टीबी और एक्स्ट्रा-पल्मोनरी टीबी। जब टीबी का बैक्टीरिया मुख्य रूप से फेफड़ों को संक्रमित करता है, तो इसे पल्मोनरी टीबी कहा जाता है। यह सबसे सामान्य प्रकार है और संक्रामक भी होता है, क्योंकि खांसने, छींकने या बोलने के दौरान बैक्टीरिया हवा के माध्यम से दूसरों तक फैल सकता है। इसके विपरीत, जब यही संक्रमण फेफड़ों के अलावा शरीर के अन्य अंगों जैसे गुर्दे, रीढ़ (स्पाइन), मस्तिष्क, लसीका ग्रंथियां (लिम्फ नोड्स) या हड्डियों, को प्रभावित करता है, तो इसे एक्स्ट्रा-पल्मोनरी टीबी कहा जाता है। यह आमतौर पर सीधे हवा के माध्यम से दूसरों में नहीं फैलती, लेकिन इसके लक्षण प्रभावित अंग के अनुसार अलग-अलग होते हैं, जिससे पहचान करना कभी-कभी कठिन हो सकता है।

इस प्रकार, टीबी का वर्गीकरण मुख्य रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि शरीर का कौन सा हिस्सा संक्रमित है, और इसी आधार पर इसके लक्षण, जांच और उपचार की योजना भी निर्धारित की जाती है। कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली वाले लोग, छोटे बच्चे, बुजुर्ग और कुपोषित व्यक्ति टीबी के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। जैसे कि हमने अपनी कहानी में देखा कि एक कुपोषित महिला जो जिसे अपने दूसरे बच्चे को जन्म देते ही टीबी हो गई।



टीबी कि पहचान के लिए किन लक्षणों को नजरअंदाज न करें

टीबी के लक्षण धीरे-धीरे विकसित होते हैं, इसलिए कई बार लोग इन्हें सामान्य बीमारी समझकर नजरअंदाज कर देते हैं। लेकिन निम्नलिखित लक्षणों पर ध्यान देना जरूरी है-

- लगातार दो सप्ताह से अधिक खांसी।
- बलगम या खून के साथ खांसी।
- बुखार, विशेषकर शाम के समय।
- रात में पसीना आना।
- वजन का तेजी से घटना।
- भूख कम लगना।
- कमजोरी और थकान।

यदि इनमें से कोई भी लक्षण दिखाई दे, तो तुरंत जांच कराना चाहिए। हम कोविड के दौर से गुजर चुके हैं। टीबी भी कोविड कि ही तरह हवा के माध्यम से फैलने वाली बीमारी है। जब कोई टीबी से संक्रमित व्यक्ति खांसता, छींकता या बोलता है, तो उसके मुंह से निकलने वाली सूक्ष्म बूंदों में मौजूद बैक्टीरिया हवा में फैल जाते हैं। आसपास मौजूद लोग इन्हें सांस के जरिए अपने शरीर में ले सकते हैं। लेकिन जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि यह केवल फेफड़ों में होने वाली टीबी के लिए सही है। मास्क के उपयोग से इस संक्रामण से बचा जा सकता है। यह समझना भी जरूरी है कि इसके अलावा टीबी सामान्य संपर्क से नहीं फैलती। इसलिए टीबी मरीजों से दूरी बनाने के बजाय उन्हें सहयोग और समर्थन देना अधिक आवश्यक है।

टीबी : एक सामाजिक और आर्थिक बीमारी

टीबी केवल एक संक्रमण नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की



स्वास्थ्य स्थिति और सामाजिक परिस्थितियों से गहराई से जुड़ी हुई बीमारी है। कुछ लोग इसमें अधिक जोखिम में होते हैं, जैसे कुपोषित व्यक्ति, एचआईवी से संक्रमित लोग, मधुमेह (डायबिटीज) के मरीज, धूम्रपान करने वाले, नशे की लत वाले व्यक्ति, छोटे बच्चे और बुजुर्ग, क्योंकि इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है। इसके अलावा, सामाजिक परिस्थितियां भी टीबी के फैलाव और गंभीरता को बढ़ाती हैं, जैसे गरीबी, भीड़भाड़ वाले घरों में रहना, खराब वेंटिलेशन और अस्वच्छ जीवन स्थितियां। यही कारण है कि टीबी को केवल एक चिकित्सा समस्या नहीं, बल्कि एक सामाजिक और आर्थिक बीमारी भी माना जाता है। यह न केवल शरीर को प्रभावित करती है, बल्कि मरीज और उसके परिवार पर आर्थिक बोझ डालती है, काम करने की क्षमता को कम करती है, सामाजिक दूरी और भेदभाव का कारण बनती है, और मानसिक तनाव व अवसाद भी उत्पन्न करती है। इसलिए टीबी अक्सर उन समुदायों में अधिक पाई जाती है जो पहले से ही सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं। विशेष परिस्थितियों में टीबी का खतरा और भी अधिक बढ़ जाता है। कुछ स्थान ऐसे होते हैं जहां संक्रमण फैलने की संभावना ज्यादा होती है, जैसे जेल, प्रवासी श्रमिकों के शिविर, शरणार्थी शिविर और अत्यधिक भीड़भाड़ वाले क्षेत्र। इन जगहों पर रहने की परिस्थितियां अक्सर चुनौतीपूर्ण होती हैं जैसे कम जगह में अधिक लोगों का रहना, हवा का उचित आवागमन न होना, पोषण की कमी और पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव। ये सभी कारण मिलकर टीबी के संक्रमण और उसके तेजी से फैलने की संभावना को बढ़ा देते हैं। इसलिए इन क्षेत्रों में विशेष सतर्कता, नियमित जांच और समय पर इलाज बेहद आवश्यक होता है।

भारत सरकार के प्रयास

टीबी मुक्त भारत की दिशा में कदम

भारत सरकार ने 2025 तक टीबी को समाप्त करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा था जो पूरा नहीं हो पाया हालांकि इसके लिए भरसक प्रयास किए जा रहे हैं, कई योजनाएं और अभियान चलाए जा रहे हैं। जिस वर्ष हम उन्मूलन के लक्ष्य को हासिल करने कि बात कर रहे थे उस वक्त के एक शोध के अनुसार- टीबी की घटनाओं और वार्षिक केस नोटिफिकेशन दर से संबंधित आंकड़े भारत सरकार के केंद्रीय टीबी प्रभाग द्वारा प्रकाशित वार्षिक रिपोर्टों से एकत्र किए गए और इन आंकड़ों का विश्लेषण कर एक उपयुक्त मॉडल के आधार पर अगले तीन वर्षों के लिए टीबी की घटनाओं एवं वार्षिक केस नोटिफिकेशन दर का पूर्वानुमान लगाया गया। उस अनुमान में यह पाया गया कि लोगों में टीबी मिलने कि दर में दरअसल वृद्धि का रुझान है। उस शोध के पूर्वानुमान के अनुसार वर्ष 2025 में टीबी की घटनाएं लगभग 28.36 लाख रहने की संभावना थी तथा वार्षिक केस नोटिफिकेशन कि दर लगभग 178 रहने का अनुमान था। यह निसंदेह किसी का भी दिल तोड़ देने वाले आंकड़े थे। लेकिन हमने यह माना कि आंकड़े जो भी कहते हो, हम टीबी के अत्यधिक मामलों को पहचानने में कामयाब रहे और उन्हें इलाज देने में सक्षम हुये। अब जरूरी है कि इस पूर्वानुमानित अवधि में भारत में टीबी की घटनाओं और केस नोटिफिकेशन दर में वृद्धि का रुझान को देखते हुये निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नीति-निर्माताओं के साथ जन सामान्य को भी को समय पर अधिक प्रभावी हस्तक्षेपों की आवश्यकता है।

इस दिशा में राष्ट्रीय रणनीतिक योजना (2020–25) तैयार की गई, जो चार प्रमुख स्तंभों पर आधारित है-Build (स्वास्थ्य तंत्र को सुदृढ़ करना), Prevent (रोकथाम), Detect (समय पर पहचान) और Treat (प्रभावी उपचार)। इन चारों स्तंभों के माध्यम से टीबी की रोकथाम, शीघ्र पहचान, गुणवत्तापूर्ण इलाज और स्वास्थ्य सेवाओं की मजबूती पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

इस योजना को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए राष्ट्रीय टीबी उन्मूलन कार्यक्रम (NTEP) संचालित किया जा रहा है, जिसके अंतर्गत कई महत्वपूर्ण गतिविधियां शामिल हैं। इनमें उच्च गुणवत्ता वाली जांच सुविधाओं के माध्यम से शीघ्र और सटीक निदान, दवा-प्रतिरोधी टीबी सहित सभी प्रकार



के मरीजों के लिए प्रभावी उपचार, तथा निजी स्वास्थ्य क्षेत्र के साथ समन्वय शामिल है, ताकि अधिक से अधिक मरीजों तक सेवाएं पहुंच सकें।

टीबी मुक्त भारत अभियान के तहत देशभर में बड़े पैमाने पर स्क्रीनिंग की जा रही है, जिसमें करोड़ों लोगों की जांच की जा चुकी है और लाखों मरीजों की समय पर पहचान संभव हो पाई है। इसके साथ ही निक्षय पोषण योजना के माध्यम से टीबी मरीजों को बेहतर पोषण उपलब्ध कराने हेतु सरकार प्रति माह 1000 की आर्थिक सहायता प्रदान करती है। वहीं निक्षय मित्र योजना के अंतर्गत आम नागरिक, संस्थाएं और संगठन टीबी मरीजों को भोजन, मानसिक सहयोग और अन्य आवश्यक सहायता प्रदान कर रहे हैं, जिससे मरीजों को उपचार के दौरान संबल मिलता है। इसके अलावा, देश में टीबी की पहचान और उपचार के लिए आधुनिक तकनीकों का व्यापक उपयोग किया जा रहा है, जैसे एआई आधारित एक्स-रे जांच, तेज़ और सटीक परीक्षण सुविधाएं तथा दवा-प्रतिरोधी टीबी के लिए नए और अधिक प्रभावी उपचार। इन सभी प्रयासों ने मिलकर टीबी नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और देश को टीबी मुक्त बनाने की दिशा में गति प्रदान की है।

कार्यक्रम के तहत संपर्क ट्रेसिंग (contact tracing) के माध्यम से मरीज के संपर्क में आए लोगों की पहचान कर उनकी जांच की जाती है, जिससे संक्रमण के फैलाव को रोका जा सके। साथ ही, संक्रमण नियंत्रण के उपायों को मजबूत किया जा रहा है और विभिन्न क्षेत्रों के सहयोग से बहु-क्षेत्रीय दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है, ताकि टीबी से जुड़े सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी सभी पहलुओं पर एक साथ काम किया जा सके।

समाज की भूमिका
जागरूकता ही सबसे बड़ा हथियार

टीबी को समाप्त करने के लिए केवल सरकारी प्रयास पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि समाज की सक्रिय भागीदारी भी उतनी ही आवश्यक है। जागरूकता ही इस बीमारी से लड़ने का सबसे बड़ा हथियार है। हमें टीबी के लक्षणों को पहचान करते आना चाहिए, समय पर जांच करानी चाहिए और इलाज को कभी बीच में नहीं छोड़ना चाहिए। साथ ही, टीबी मरीजों के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव न करते हुए उन्हें सहयोग और समर्थन देना चाहिए तथा अपने आसपास के लोगों को भी इसके प्रति जागरूक करना चाहिए। यह याद रखना जरूरी है कि टीबी के मरीजों को सबसे अधिक आवश्यकता समझ और सहारे की होती है। टीबी का इलाज पूरी तरह संभव है, बशर्ते समय पर जांच हो और नियमित रूप से दवाएं ली जाएं। भारत सरकार के सभी सरकारी अस्पतालों तथा अनेक निजी स्वास्थ्य केंद्रों पर टीबी की जांच और उपचार पूरी तरह निःशुल्क उपलब्ध है। आमतौर पर मरीज को कम से कम 6 महीने तक दवा लेनी होती है, लेकिन कई लोग बीच में दवा छोड़ देते हैं, जिससे बीमारी दोबारा बढ़ सकती है और दवाओं का प्रभाव कम हो जाता है। इसलिए पूरा इलाज करना अत्यंत आवश्यक है। आवश्यकता पड़ने पर टोल-फ्री हेल्पलाइन निक्षय संपर्क 1800-11-6666 पर संपर्क किया जा सकता है या TB Aarogya Sathi ऐप के माध्यम से भी जानकारी और सहायता प्राप्त की जा सकती है।

बीपीटी, एमपीटी (कार्डियोथोरेसिक), पी-एच.डी (स्वास्थ्य विज्ञान)। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, ब्लॉग्स में कविताएँ प्रकाशित, पारंपरिक कलाओं जैसे मांडना, मधुबनी, मिथिला, आदिवासी और वारसी कलाओं में रूचि। वर्तमान में भोपाल स्मारक अस्पताल एवं अनुसंधान केन्द्र में फिजियोथेरेपिस्ट। बागमुगलिया, भोपाल में निवासरत।

nehalraviraj shah@gmail.com

हमारी प्रयोगशालाएँ

नौसेना विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी प्रयोगशाला



डॉ. मनीष मोहन गोरे

नौसेना विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रयोगशाला (एनएसटीएल), विशाखापटनम, नौसेना के हथियारों और संबंधित प्रणालियों (अंतर्जलीय खान, टारपीडो, अग्नि नियंत्रण व्यवस्थाएं, हथियार निर्मोचन, लक्ष्य फंदे आदि) के अनुसंधान और विकास का कार्य करता है। यह प्रयोगशाला 20 अगस्त 1969 को अस्तित्व में आई थी। कमोडोर के आर रमानाथ (बाद में रियर एडमिरल) इस प्रयोगशाला के संस्थापक निदेशक थे। वह डीआरडीओ मुख्यालय में नौसेना विज्ञान और प्रौद्योगिकी (डीएनएसटी) के निदेशक भी थे। इस प्रयोगशाला ने नौसेना डॉकयार्ड, विशाखापत्तनम में पीओएल स्टोर्स से कार्य शुरू किया। 5 सितंबर 1969 को इसे आंध्र विश्वविद्यालय में एक युद्ध बैरक में स्थानांतरित किया गया और प्रयोगशाला का आधिकारिक उद्घाटन श्री लंकापल्ली बुल्लाय, आंध्र विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति द्वारा 4 अप्रैल 1970 को किया गया। यह प्रयोगशाला आंध्र विश्वविद्यालय परिसर में लगभग ढाई वर्षों तक काम करती रही और बाद में विशाखापत्तनम के किर्लामपुड़ी लेआउट में किराए के आवास में चली गई। 2 मार्च 1974 को भारत के तत्कालीन रक्षा मंत्री के तत्कालीन वैज्ञानिक सलाहकार डॉ. बी. डी. नागचौधरी द्वारा एनएसटीएल के मुख्य भवन के निर्माण की आधारशिला रखी गई। इस बीच 10,000 वर्ग फुट क्षेत्र के अस्थायी शेड के निर्माण के लिए एक अलग मंजूरी जारी की गई थी और प्रयोगशाला को अपने किराए के आवास से इस अस्थायी शेड में स्थानांतरित कर दिया गया। विशाखापत्तनम शहर से एनएसटीएल के अपने परिसर में शिफ्टिंग सितंबर से दिसंबर 1975 के बीच पूरी हुई।

अनुसंधान क्षेत्र

नौसेना विज्ञान तकनीकी प्रयोगशाला (एनएसटीएल) अंतर्जलीय हथियारों, संबंधित प्रणालियों के डिजाइन और विकास तथा नौसेना प्लेटफार्मों के संरचनात्मक डिजाइन की दिशा में काम करता है। वर्तमान में एनएसटीएल के प्रमुख अनुसंधान क्षेत्र हैं : टारपीडो, (हल्का वजन एवं भारी वजन), डिकॉयस (विस्तारयोग्य एवं गतिशील), माइन्स (भूमिगत, दलदली, एवं बहु-प्रभावी), फायर नियंत्रण प्रणाली (प्रत्युपाय के लिए एएसडब्ल्यू और एफसीएस), स्वायत्त प्लेटफार्मों (अंतरजलीय एवं समुद्र सतही वाहन) और नौसेना छिपाव प्रौद्योगिकी।

नौसेना सामग्री अनुसंधान प्रयोगशाला

नौसेना सामग्री अनुसंधान प्रयोगशाला (एनएमआरएल) कई क्षेत्रों में बुनियादी अनुसंधान के साथ-साथ धातुकर्म, पॉलिमर, सिरेमिक, कोटिंग, जंग और विद्युत सुरक्षा, समुद्री जैवप्रौद्योगिकी, पर्यावरण विज्ञान जैसे क्षेत्रों में अनुप्रयोग-उन्मुख

प्रौद्योगिकी विकास का कार्य भी कर रही है। एनएमआरएल को गुणवत्ता प्रबंधन प्रणाली प्रमाणन आईएसओ 9001-2015 से सम्मानित किया गया है।

नौसेना सामग्री अनुसंधान प्रयोगशाला

पहले इसका नाम राष्ट्रीय रासायनिक व धातु प्रयोगशाला (एनसीएमएल) हुआ करता था। इस प्रयोगशाला की स्थापना 5 जनवरी 1953 को बम्बई (अब मुम्बई) के नौसैनिक डॉकयार्ड में 6000 वर्ग फीट के एक छोटे से कार्यशाला में की गई। इसकी स्थापना भारतीय नौसेना को उसकी दैनिक रखरखाव की समस्याओं में वैज्ञानिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से की गई। इसके बाद जलगत संक्षारण-विरोधी तथा जलपोत-दूषण-विरोधी पेंट और ऋणाग्रीय (कैथोडिक) संरक्षण के क्षेत्र में अनुसन्धान एवं विकास के माध्यम से अनेक प्रोद्योगिकियां विकसित की गईं, जो गुणवत्ता में पाश्चात्य देशों के समतुल्य हैं और जिन्हें भारतीय नौसेना ने अपनाया।

भारतीय नौसेना के साथ निरन्तर कार्यगत आदान-प्रदान के चलते 1970 के दशक में इस प्रयोगशाला के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया गया। वर्ष 1995 में राष्ट्रीय रासायनिक व धातु प्रयोगशाला का नाम बदलकर नौसैनिक सामग्री अनुसंधान प्रयोगशाला (एनएमआरएल) रखा गया और 1997 में इसका नौसैनिक डॉकयार्ड से अम्बरनाथ में स्थानान्तरण किया गया। इसी प्रकार, उच्च क्षमता ईंधन सेल, विशिष्ट पॉलिमर, धातुओं व सेरैमिकों, उन्नत संरक्षण प्रौद्योगिकियों, पर्यावरणीय नियंत्रण के रासायनिक व जैविक उपायों आदि क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास की गतिविधियों में नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में स्पष्ट वृद्धि दर्ज हुई। इन अनुसंधान क्षेत्रों में अच्छे कार्यप्रदर्शन के कारण रक्षा अनुसंधान एवं विकास संस्थान (डीआरडीओ) ने इस प्रयोगशाला के विस्तार और आधुनिकीकरण के लिए स्वीकृति प्रदान की, जिससे अम्बरनाथ में 60 एकड़ के पूर्ण सुविधा-सम्पन्न तकनीकी-आवासीय परिसर का निर्माण हुआ। समुद्री पर्यावरण के लिए उपयुक्त सामग्री और प्रौद्योगिकियों के क्षेत्र में एनएमआरएल पिछले 6 दशकों से काम कर रहा है।

अनुसंधान क्षेत्र

नौसेना सामग्री अनुसंधान प्रयोगशाला (एनएमआरएल) समुद्री सामग्री, संक्षारण संरक्षण और ऊर्जा



नौसेना विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रयोगशाला

आवश्यकताओं के संबंध में भारतीय नौसेना को तकनीकी समाधान प्रदान करने के लिए काम कर रही है। इस प्रयोगशाला के केंद्रित अनुसंधान एवं विकास क्षेत्र इस प्रकार हैंरू धातु, बहुलक, सिरेमिक और मिश्रित सामग्री का विकास, फ्यूल सेल और सुपरकैपेसिटर पर आधारित सतत ऊर्जा प्रौद्योगिकी, हाइड्रोजन उत्पादन प्रौद्योगिकी, पनडुब्बी और भूतल युद्धपोतों के पानी के नीचे ध्वनिक छुपाव हेतु सामग्री, भारतीय नौसेना के समुद्री प्लेटफार्मों और संरचनाओं के लिए संरक्षण प्रौद्योगिकी, कार्यात्मक चीनी मिट्टी की चीज़ें और नौसेना मिश्रधातु, समुद्री पर्यावरण का जैव-उपचार, समुद्री पर्यावरण के लिए सतत ग्रीन प्रौद्योगिकी।

पद्धति अध्ययन तथा विश्लेषण संस्थान

पद्धति अध्ययन तथा विश्लेषण संस्थान (ISSA), नियोजन-परिनियोजन, युक्तिक और बल शक्य मूल्यांकन, युक्तिक-सामरिक और मिशन योजना आदि से संबंधित विभिन्न रक्षा अनुप्रयोग के लिए पद्धति विश्लेषण, मॉडलिंग और सिमुलेशन क्षेत्र में कार्यरत् है। यह संस्थान तीनों सेनाओं के लिए प्रौद्योगिकी विकसित करता है। भारतीय रक्षा पर्यावरण में संक्रिया विज्ञान और पद्धति विश्लेषण तकनीक प्रयोग करने का विचार वर्ष 1959 के आरंभ में आया। एक छोटा समूह - 'शस्त्र प्रणाली विश्लेषण समूह (WEG)' का गठन तीनों सेनाओं, अंतर सेवा संस्थानों और रक्षा मंत्रालय के लिए शस्त्र और उपकरण के संक्रिया अनुसंधान और कम लागत के अध्ययन के लिए किया गया।

क्रिया-कलापों के विविधीकरण के साथ वर्ष 1963 में 'शस्त्र प्रणाली विश्लेषण समूह (WEG)' का नाम बदलकर



पद्धति अध्ययन एवं विश्लेषण संस्थान

'वैज्ञानिक मूल्यांकन समूह (SEG)' कर दिया गया और आगे वर्ष 1968 में 'वैज्ञानिक मूल्यांकन समूह (SEG)' एक पूर्णतः संपन्न निदेशालय बना जिसका नाम 'वैज्ञानिक मूल्यांकन निदेशालय (DSE)' रखा गया। निदेशालय ने निर्णायक रक्षा योजना और विश्लेषण, शस्त्र मूल्यांकन, क्षति मूल्यांकन, निष्पादन मूल्यांकन और संक्रिया अनुसंधान अनुप्रयोगों आदि क्षेत्रों में सेवा मुख्यालयों, रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार, डीआरडीओ मुख्यालयों और रक्षा मंत्रालयों को अपनी परामर्शी सेवाएं जारी रखीं। इस दौरान बड़ी संख्या में पद्धति विश्लेषण अध्ययन किए गए। इन अध्ययनों के परिणाम और संस्तुतियों ने सर्वोच्च निर्णय निर्धारण प्रक्रिया में योगदान दिया।

पद्धति अध्ययन एवं विश्लेषण संस्थान

डीआरडीओ में पद्धति विश्लेषण के क्रियाकलापों के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप, डीएससई (DSE) के प्रकार्य नए सिरे से परिभाषित किए गए तथा वर्ष 1980 में वर्तमान नाम अर्थात् पद्धति अध्ययन एवं विश्लेषण संस्थान (ISSA) रखा गया। वर्ष 1972 में एक छोटे समूह जिसका नाम था 'वैमानिक पद्धति विश्लेषण समूह (ASAG)' का सृजन वैमानिक पद्धति अध्ययन एवं विश्लेषण का पालन करने के उद्देश्य से किया गया। यह समूह राष्ट्रीय वैमानिकी प्रयोगशाला, बैंगलोर से वैमानिकी निदेशालय की टुकड़ी के रुप में कार्य कर रही थी। वर्ष 1974 में 'वैमानिक पद्धति विश्लेषण समूह (ASAG)' को स्वतः लेखा पूर्ण इकाई अर्थात् वैमानिक पद्धति अध्ययन एवं विश्लेषण केन्द्र (कासा) में परिवर्तित किया गया और इसका परिसर 'वैमानिक विकास स्थापना (ADE), बैंगलोर' में स्थानन्तरित कर दिया गया। सन् 1974 से 2003 तक कासा ने डीआरडीओ मुख्यालय और भारतीय वायु सेना के लिए पद्धति विश्लेषण अध्ययन की ऋंखला में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अपने विषयपरक विश्लेषण के साथ कई डिजाइन और विकास क्रिया-कलापों और नीति स्तर के मामलों में योगदान दिया।

एकीकृत युद्ध परिस्थिति (integrated combat environment) के अंतर्गत पद्धति विश्लेषण क्रिया-कलापों और वारगेम विकास प्रक्रिया में तालमेल के उद्देश्य से वर्ष 2003 में कासा का ईसा (ISSA) के साथ विलय किया गया। इसके साथ ही प्रशिक्षण और योजना वारगेम, एकीकृत वायु रक्षा एवं इलेक्ट्रानिक वारफेयर, कॉम्बेट मॉडलिंग, सिमुलेशन सिस्टम एनालेसिस और कंप्यूटरीकृत वारगेम के क्षेत्र में 'ईसा', नोडल पद्धति विश्लेषण प्रयोगशाला के रुप में उभर कर आई और वर्ष 2013 में ईसा को सैम क्लस्टर के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है जिसके अंतर्गत ईसा को प्रशिक्षण व योजना वारगेम, एकीकृत वायु रक्षा एवं इलेक्ट्रानिक वारफेयर, कॉम्बेट मॉडलिंग, सिमुलेशन, पद्धति विश्लेषण तथा कंप्यूटरिकृत वारगेम आदि क्षेत्र में अधिदेश आज्ञा के साथ रखा गया।

अनुसंधान क्षेत्र

- रक्षा अनुप्रयोग के लिए मॉडलिंग, सिमुलेशन एवं प्रणाली विश्लेषण।
- प्रणाली मूल्यांकन अध्ययन।
- कॉम्बैट मॉडल विकास।
- रक्षा मॉडलिंग और सिमुलेशन डोमेन के लिए कंप्यूटर विज्ञान और अनुप्रयोग संचालन अनुसंधान और निर्णय समर्थन तकनीक।

डॉ. मनीष मोहन गोरे निस्पर दिल्ली में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं। आपका जन्म 15 जुलाई 1981 को देवरिया उ.प्र. में हुआ। वे विज्ञान लेखन के क्षेत्र में विज्ञान कथा और लेख दोनों ही लिखते रहे हैं। आपने देशभर के वरिष्ठ विज्ञान लेखकों की साक्षात्कार-श्रृंखला तैयार की है। विज्ञान लेखन, विज्ञान संचार और विज्ञान जिज्ञासाओं को ध्यान में रखकर उन्होंने जिन वैज्ञानिकों से बातचीत की वह काफी चर्चा में रहे। राजभाषा विभाग द्वारा जन्तु व्यवहार नाम पुस्तक के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान पुरस्कार से सम्मानित हैं।

mmg@niscpr.res.in

भोपाल में 5वां समर्थ भारत कॉन्क्लेव संपन्न



मंच पर महामहिम राज्यपाल श्री मंगू भाई पटेल, रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, स्कोप ग्लोबल स्किल यूनिवर्सिटी के कुलाधिपति डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी, रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के प्रो. चांसलर डॉ. अदिति चतुर्वेदी वत्स

राजधानी भोपाल स्थित कुशाभाऊ ठाकरे अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन सेंटर (मिंटो हॉल) में आयोजित 5वां समर्थ भारत कॉन्क्लेव 2026 सम्पन्न हुआ। 'रीइमेजिनिंग इम्पैक्टः एआई-ड्रिवन स्किलिंग, फाइनेंशियल इंक्लूजन एवं सोशल एंटरप्राइज फॉर विकसित भारत' थीम पर आधारित इस कॉन्क्लेव में प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री मंगू भाई पटेल मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। मंच पर रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, स्कोप ग्लोबल स्किल यूनिवर्सिटी के कुलाधिपति डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी, रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलगुरु डॉ. रवि प्रकाश दुबे, स्कोप ग्लोबल स्किल यूनिवर्सिटी के कुलगुरु डॉ. विजय सिंह, प्रो चांसलर डॉ. अदिति चतुर्वेदी वत्स तथा वाधवानी फाउंडेशन के संस्थापक कर्नल संतोष भी उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अदिति चतुर्वेदी वत्स ने किया। इसके पश्चात महामहिम राज्यपाल का स्मृति चिन्ह भेंट कर स्वागत किया गया।

महामहिम राज्यपाल श्री मंगू भाई पटेल ने आईसेक्ट समूह के कार्यों की सराहना करते हुए कहा कि एआई के क्षेत्र में 'कौशल रथ' जैसी पहल बच्चों में तकनीकी साक्षरता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। उन्होंने सामाजिक और पर्यावरणीय संरक्षण के साथ नवाचारों की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि गरीबों के जीवन में खुशहाली लाने और 'विकसित भारत' के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कौशल, उद्यमिता और शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर प्रयास जरूरी हैं। उन्होंने स्किल इंडिया, खेलो इंडिया और स्वच्छ भारत जैसे अभियानों का उल्लेख करते हुए कहा कि डिजिटल और तकनीकी सहयोग से देश एक मजबूत इकोसिस्टम की ओर बढ़ रहा है। इससे पहले कॉन्क्लेव की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने बताया कि आईसेक्ट पिछले 40 वर्षों से शिक्षा, कौशल, समावेशन और अवसर के क्षेत्र में कार्य कर रहा है और अब 'आईसेक्ट इंडिया' के रूप में पैन इंडिया नेटवर्क के साथ-साथ अफ्रीका, मिडिल ईस्ट और जर्मनी तक अपनी पहुंच बना चुका है। उन्होंने कहा कि विकसित भारत की दिशा में आईसेक्ट की भूमिका निरंतर बढ़ रही है और सीएसआर के माध्यम से साझेदार संस्थाओं के साथ मिलकर सामाजिक-आर्थिक प्रभाव को सशक्त किया जा रहा है। रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय का अटल इन्क्यूबेशन सेंटर देश के शीर्ष 5 केंद्रों में शामिल है।

अपने संबोधन में श्री संतोष चौबे ने कहा कि उनके संस्थान में भारतीय पारंपरिक मूल्यों को आधुनिक शिक्षा के साथ जोड़ा जा रहा है। उन्होंने बताया कि अब संस्थान का फोकस कंप्यूटर साक्षरता से आगे बढ़कर एआई मिशन पर केंद्रित है, जिसके तहत एआई आधारित कोर्स, शॉर्ट टर्म प्रोग्राम और शैक्षणिक यात्राएं शुरू की गई हैं। उन्होंने प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी



के एआई मिशन का उल्लेख करते हुए कहा कि सरकार के साथ मिलकर इस दिशा में ठोस प्रयास किए जा रहे हैं।

कार्यक्रम के दौरान आईसेक्ट पर आधारित एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म प्रदर्शित की गई। साथ ही आईसेक्ट एवं स्कोप ग्लोबल स्किल यूनिवर्सिटी की वार्षिक रिपोर्ट, कौशल रथ पर आधारित रिपोर्ट तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर हिंदी में प्रकाशित पुस्तक का विमोचन कर उन्हें महामहिम राज्यपाल को भेंट किया गया।

कार्यक्रम का दूसरा सत्र 'नॉलेज सेशन' का रहा जिसमें विभिन्न अतिथियों सहित आईसेक्ट प्रतिनिधियों ने 'विकसित भारत के लिये एआई' विषय पर पैनल डिस्कशन में अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये। सेशन के अंतर्गत 'वोकेशनल एजुकेशन प्रोग्राम इन स्कूल एनुअल रिपोर्ट आफ लद्दाख, मेघालय, झारखंड, यूपी, बिहार', 'इम्पैक्ट रिपोर्ट आन राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम नेशनल हेल्थ मिशन', 'आईसेक्ट इम्पैक्ट रिपोर्ट आन इम्पिलटेशन आफ यूनिसेफ पासपोर्ट टू अर्निंग प्रोग्राम' का लोकार्पण भी किया गया। इस दौरान बहुत सारे प्रोजेक्ट में रोजगार प्राप्त करने वाले कैंडिडेट को आफर लेटर भी प्रदान किये गये। नॉलेज सेशन का संचालन एजीयू निदेशक डॉ. अदिति चतुर्वेदी वत्स ने किया।

तीसरे सत्र 'को-क्रिएटिंग इम्पैक्ट : द पावर ऑफ कोलैबोरेटिव सीएसआर' में विभिन्न कॉर्पोरेट और शैक्षणिक संस्थानों के प्रतिनिधियों ने सहयोगात्मक प्रयासों के जरिए सामाजिक प्रभाव बढ़ाने पर जोर दिया। सत्र में जेनपैक्ट की वाइस प्रेसिडेंट सुश्री रचना चुघ, वाधवानी फाउंडेशन से कर्नल संतोष, एनएसडीसी की प्रतिनिधि सुश्री बरकत उल निसा, पॉलीकैब फाउंडेशन के मैनेजर अभिजीत झाल्टे और आईसेक्ट के ईवीपी अरविंद चतुर्वेदी सहित अन्य अधिकारी उपस्थित रहे। इस अवसर पर आईसेक्ट और जेनपैक्ट के बीच स्किल बिल्ड प्रोग्राम के लिए एमओयू का आदान-प्रदान किया गया।

समापन सत्र के प्रमुख अतिथियों में श्री संतोष चौबे, चेयरमैन, आईसेक्ट इंडिया; डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी, डायरेक्टर ऑपरेशंस, आईसेक्ट इंडिया; अभिषेक पंडित, प्रो. चांसलर, स्कोप ग्लोबल स्किल्स यूनिवर्सिटी; श्री अरविंद चतुर्वेदी, कार्यकारी उपाध्यक्ष, आईसेक्ट इंडिया; तथा डॉ. आर.पी दुबे, कुलगुरु, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय उपस्थित रहे। इस सत्र के दौरान मध्य प्रदेश स्टेट प्रोफाइल का लोकार्पण किया गया तथा विभिन्न श्रेणियों में उत्कृष्ट कार्य करने वाले उद्यमियों को सम्मानित किया गया। इसमें बेस्ट वूमन एंटरप्रेन्योर अवॉर्ड झाबुआ की कुसुम भारपोड़ा को, गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु एंटरप्रेन्योर ऑफ द ईयर अवॉर्ड भूपेंद्र शर्मा, दीप चंद, प्रीति विश्वकर्मा, पवन मिश्र को तथा चेयरमैन मेडल ऑफ एक्सीलेंस - एंटरप्रेन्योर ऑफ द ईयर अवॉर्ड श्री सुभाष राठौर को प्रदान किया गया। साथ ही कार्यक्रम के दौरान विभिन्न उद्यमियों ने अपने अनुभव साझा करते हुए सफलता की प्रेरक कहानियां प्रस्तुत कीं, जिससे उपस्थित प्रतिभागियों को नई दिशा और उत्साह प्राप्त हुआ।

रपट : रूपेन्द्र सिंह

आईसेक्ट पब्लिकेशन



फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली द्वारा एक्सेलेंस इन बुक प्रोडक्शन के 6 पुरस्कारों से सम्मानित प्रकाशन

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा
कला-साहित्य पर हिंदी, अंग्रेजी एवं
अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

स्व-प्रकाशन योजना

हिंदी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान की विभिन्न विधाओं में पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने लेखकों के लिए स्व-प्रकाशन योजना एक अनूठे उपक्रम के रूप में शुरू की है।

जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक, अनूदित, संपादित रचनाओं का पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है, पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल से संपर्क करें।

आईसेक्ट पब्लिकेशन से पुस्तक प्रकाशन के लाभ ही लाभ

- प्रकाशित पुस्तक आईसेक्ट पब्लिकेशन की पुस्तक सूची में शामिल की जायेगी।
- पुस्तक, बिक्री के लिये सुप्रसिद्ध स्टॉलों एवं मेलों आदि में उपलब्ध रहेगी।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जायेगा।
- प्रकाशित पुस्तक, शहरों व कस्बों में स्थापित वनमाली सृजनपीठ के सृजन केन्द्रों में पठन-पाठन और चर्चा के लिए भिजवाई जायेगी।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद-चर्चा आदि की व्यवस्था की जा सकेगी।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, आईसेक्ट ऑनलॉइन आदि) पर भी बिक्री के लिये प्रदर्शित की जायेगी।

विशेष : शोध पर आधारित पुस्तकों के प्रकाशन में अग्रणी संस्थान
(विश्वविद्यालयों के फैकल्टी एवं छात्रों के लिये विशेष स्कीम)

सुरुचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● नयनाभिराम पेपर बैक में

कुल बिक्री के आधार पर वर्ष में एक बार नियमानुसार रॉयल्टी भी

पांडुलिपि किसी भी विधा में स्वीकार

आप स्वयं पधारें या संपर्क करें

- प्रकाशन अधिकारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन : मो.91+9826493844
- अध्यक्ष, वनमाली सृजनपीठ : मो.91+9425014166
  ई-7/22 अरेरा कॉलोनी, भोपाल-16 फोन- 0755-4851056
- E-mail : jyoti.r@aisect.org, aisectpublications@aisect.org



Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/26-28
R.N.I. No. 51966/1989, ISSN 2455-2399
ELECTRONIKI AAPKE LIYE: JUNE 2026

